

**Contribution
of**



Maharana Pratap

r. 1572 - 1597 CE

54th Custodian of The House of Mewar

**in
Agricultural Augmentation**

This booklet is a compilation of articles on
**Contribution of Maharana Pratap (r. 1572–1597 CE) in
Agricultural Augmentation**
that are published in various books and magazines.

Published by:
Maharana of Mewar Charitable Foundation (MMCF), The City Palace, Udaipur.

Edition: 2017

Source: Maharana Mewar Special Library, Maharana Mewar Research Institute
and Maharana Mewar Historical Publications Trust, The City Palace, Udaipur

Updated as on 14th November 2017

ॐ



गणेश स्तुति

गजाननं भूतगणादि सेवितं कपिल्थ जम्बू फल चारु भक्षणम् ।
उमासुतं शोक-विनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वर पाद पंकजम् ॥

श्रीमदेकलिंगोविजयते



Parmeshwaraji Maharaj Shree Eklingnath ji
The Ruler of Udaipur, Mewar

मेवाड़ अधिपति परमेश्वराजी महाराज श्री एकलिंगनाथ जी

मेवाड़ भूमि के आदिदेव जय एकलिंग त्रिपुरारी की ।
जय गौरी उमा भवानी की जय जय पिनाक धनुधारी की ॥

Bappa Rawal receiving 'Mewar' from his Guru Maharishi Harit Rashi



Painting depicting Bappa Rawal with Maharishi Harit Rashi. Founding of the State of Mewar was based on the principle of Guru-Shishya (teacher-pupil) parampara. In this painting Maharishi Harit Rashi is entrusting the State of Mewar to Bappa Rawal, A.D. 734



राजश्रीबापूरावलजी त्रिकुण्डलसौंदर्यतामामोरीनेभारजेमेयाहनेवालीको॥१४४॥

Bappa Rawal sets out for Chittor



HH Maharana Bhagwat Singh Mewar of Udaipur (r. 1955-1984 CE)
Founder

Maharana of Mewar Charitable Foundation

गोलोकवासी महाराणा भगवत सिंह मेवाड़ (r. 1955-1984 CE)
संस्थापक
महाराणा मेवाड़ चैरिटेबल फाउण्डेशन



Shriji Arvind Singh Mewar of Udaipur
Chairman and Managing Trustee
Maharana of Mewar Charitable Foundation

श्रीजी अरविन्द सिंह मेवाड़
अध्यक्ष एवं प्रबंध न्यासी
महाराणा मेवाड़ चैरिटेबल फाउण्डेशन

प्राक्कथन

मेवाड़ में

कृषिकर्म और वृक्षविद्या की परंपरा

राजस्थान के 'मेवाड़' क्षेत्र की एक देश के रूप में पहचान और प्रतिष्ठा के मूल में गुहिलवंश ने जो योगदान किया, वह विगत सौ वर्षों के इतिहास में विशिष्ट और स्मरणीय हैं। वर्तमान में यह राजस्थान के दक्षिण भूभाग में है और इसका भौगोलिक स्वरूप उदयपुर, राजसमंद, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़ और प्रतापगढ़ जिलों की सीमाओं को मिलाकर निर्धारित होता है यह उत्तरी अक्षांश के 23° 49' और 25° 28' तथा पूर्वी देशांतर के 73° 1' और 75° 49' के बीच विद्यमान हैं। मेवाड़ का भौगोलिक विस्तार 48,77,958 हेक्टेयर माना गया है। हालांकि राजतंत्र के दौरान समय-समय पर यह सीमा बढ़ती-घटती भी रही। यह प्रदेश भारतीय कुलपर्वतों में गिने गए पारियात्र अथवा अरावली पर्वतमाला में बसा हुआ और विन्ध्याचल पर्वतमाला से लगा हुआ है। यह खान्योत्पाद के साथ ही कृष्योत्पाद से समृद्ध रहा है। इसी कारण यहाँ देश जैसी सम्भावनाएँ बनीं। इसे 'मेदपाट', 'क्षीरवाट' और 'प्राग्वाट' भी कहा गया है। महाभारत में कृषि और खानों के उत्पादकर्ता होने से इसे 'वाटधनाज' कहा गया है। (एपिग्राफिया इण्डिका भाग 27, पृष्ठ 222) स्कन्दपुराण में इस प्रदेश का नाम 'मेवाड़' आया है यही नाम प्राकृत ग्रंथों में मिलता है किन्तु 10वीं सदी के कतिपय अभिलेखों में इसको 'मेदपाट' कहा गया है।

मौर्यकाल तक इस प्रदेश की समृद्धि को पहचान लिया गया था और तब राज्यकोश की अर्थ से पूर्ति करने वाले 'आहार' क्षेत्र के रूप में इसे चिह्नित किया गया। अशोक मौर्य के दो शिलालेखों में यह संकेत दिया गया। रूपनाथ (बैराट व सहसराम में भी) वाले पाली भाषा के प्रथम लघु अभिलेख में आया है—'एतिना च वयजनेना यावतक तुपक अहाले सवर विवसेतवायुति। 'एतिमा वयजनेना' से आशय है अनुशासन या आज्ञा के अनुसार और 'अहाले' का अर्थ है आहार या आय का द्वार अर्थात् जहाँ-जहाँ से आय होती हो। (इण्डियन एण्टिक्वेरी 1908 ई., पृष्ठ 20-23) इस समृद्धि के कारण ही यह यज्ञभूमि के रूप में पहचाना गया और यहाँ अश्वमेध यज्ञ के कर्ता पराशरीपुत्र सर्वतात् ने वाटिका संरक्षण की परम्परा डाली और बाद में 225 ईस्वी में मालवों ने यहाँ एकषष्टिरात्र जैसा वैदिक यज्ञ किया जो भारतीय अभिलेखीय साक्ष्यों में सबसे बड़े यज्ञ के रूप में रेखांकित किया गया है।

कृषि उत्पादन के पुरासाक्ष्य :

इस क्षेत्र में अब तक 115 ऐसे पुरातात्विक स्थलों को पहचाना जा चुका है, जहाँ मानवीय बस्तियाँ विद्यमान थीं और वे विशेष रूप से पशुपालन और उस पर आधारित कृषि तथा धातु उत्पाद जैसे व्यवसायों से जुड़े हुए थे। इनमें बागोर, गिलूंड और उनके मध्यवर्ती भगवानपुरा, छतरीखेड़ा, मरमी, आहाड और उसके समीपवर्ती बालाथल, महाराज की खेडी,

मोरजाई, जोयड़ा, उमंड, हीराजी का खेड़ा आदि के नाम वहाँ से प्राप्त पुरातात्विक प्रमाणों के लिए स्मरणीय है। न केवल बेड़च, बनास और गंभीरी, गोमती आदि नदियों के प्रवाह क्षेत्र में बस्तियाँ विकसित हुईं, बल्कि भीतरी मैदानी इलाकों में भी बालाथल, करणपुर, कपासन जैसी बस्तियों का मिलना वहाँ कृषिकर्म के विकसित रूप में होने का परिणाम है अथवा धातु उत्पादन आधारित जीविका का परिचायक है।

छतरीखेड़ा में गिलूंड के समकालीन प्रमाण मिले हैं। वहाँ चूल्हों और भट्टियों के अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं जो वहाँ कृषि के उपकरण बनाने वाले समुदाय के बसे होने की ओर संकेत करते हैं। बालाथल गांव नदी के प्रवाह क्षेत्र की अपेक्षा मैदानी इलाके में बसी संस्कृति का परिचायक है और वहाँ उत्पादों की सुरक्षा के लिहाज से किसी किले का निर्माण होने का मत दिया गया है। मेवाड़ में 4000 से 600 ईसापूर्व तक के प्रमाणों को खोजा गया है और ये कई स्तरों पर मिले हैं। यह भी कहा गया है कि कृषि, मिट्टी और अन्य औजारों तथा खिलौनों की कल्पना पहले यहीं से जागी थी। जिन दिनों विश्व में जनजीवन की निश्चित गतिविधियों का ठिकाना नहीं था, तब मेवाड़ में एक विकसित सभ्यता और संस्कृति अस्तित्व में थी। यहाँ मुख्य बस्ती के आसपास उपबस्तियों को बसाने का प्रचलन था। यह परंपरा गोमती नदी के प्रवाह क्षेत्र में सराड़ा के आसपास भी मिली है। इसमें बड़े गांव से निकलकर उसके आसपास खेड़े फले अथवा भागलें बसाने का विचार किया जाता था। यह परम्परा यहाँ आज तक रही है और गांव के साथ गांवड़े की मान्यता जीवन्त है।

मत्स्यपुराण में इस क्षेत्र की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि पारियात्र पर्वतमाला का सौन्दर्य बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें जो कन्दराएं हैं, वे अद्भुत हैं और वहां की गुफाएं ध्यान और तप के लिए महत्वपूर्ण एवं उत्तमोत्तम हैं यह पर्वत श्रृंखला सभी ऋतुओं में समशीतोष्ण और सदैव विकसित होने वाले पुष्पों से व्याप्त रहती है, यहाँ अनेकानेक प्रकार के वन और वनस्पतियां पाई जाती हैं, यहाँ विविध प्रकार की धातुओं की प्राप्ति होती है और धातुओं के रसगुण के कारण ही वे बहुत चित्र—विचित्र है, यहाँ रस रसायन कला की ओर संकेत करता लगता है, यह अनेकानेक गुफागृहों से युक्त है, सब ओर से घने वृक्षों घिरा हुआ है, रंग—बिरंगे ऐसे वृक्षों से घनीभूत है जो लोगों को उनकी इच्छा के अनुसार फलादि प्रदान करते हैं और यहां अनेक आकार—प्रकार के पक्षी—समूहों से व्याप्त है। यहां यत्र—तत्र झरने झरते रहते हैं और अनेक जलाशय देखने को मिलते हैं। (मत्स्य पुराण, 148, 7—10)

इस प्रदेश के आंतरिक उपक्षेत्रों में गिरवा, देवड़ावाट, मगरा, मेवल, मुंडल, छप्पन—चोण्डा, कांठल, झालावाड़, भोमट, बोरट, सेरा—नला, स्यालपट्टी, वनावल, खड़गाचल, मेवाड़, सिलोटी, खारीभ्रदा, मेरवाड़, गोठां, खेराड़, ऊपरमाल, आंतरी और कुंडाल जैसे इलाके मुख्य हैं। इनको उक्त नामों के साथ ही पट्टी के नाम से भी जाना जाता है। ये नाम मूलतः कृषि, पशुपालन, और सिंचाई अथवा पर्वतीय या मैदान क्षेत्र आधार पर पड़े हैं, जैसा कि मुहणोत नैणसी का मत है। नैणसी ने तो इन क्षेत्रों में होने वाली खेती की उपज—निपज के

नाम और मान—प्रमाण भी दिए हैं। अबुल फजल ने भी मेवाड़ की आय को आंकड़ों सहित रेखांकित किया है।

कृषि व वृक्षों से पर्यावरण की धारणा :

पर्यावरण संरक्षण के लिए यह प्रयास आवश्यक है कि वन, वायु और वृष्टि की निरंतरता बनी रहे। स्मृतियों और प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों सहित पुराण—उपपुराणों में इस सम्बन्ध में जोर देकर कहा गया है कि किसी भी मानवीय आवास या बस्ती के आसपास वन का विकास किया जाए, पवन को शुद्ध रखा जाए और बारिश के सुनिश्चित उपाय किए जाए। भारत की यज्ञमय संस्कृति के मूल में पर्यावरण के संरक्षण की अवधारणा मिलती है। मेवाड़ ने इस सत्य को बहुत आरंभ से ही समझ लिया था। कृषि उत्पाद और धात्विक उत्पादों से धनी इस धरती पर पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षा के लिए धर्म के साथ जुड़े उपायों पर जोर दिया गया था तथा इसकी चेतना लोकाश्रय और राज्याश्रय दोनों ही स्तर पर देखने में आती हैं।

मेवाड़ में कृषि और वन भूमि के संरक्षण का पूरा ध्यान दिया गया। पर्वतीय और मैदान बहुल इस प्रदेश में अनेक प्रकार के पेड़ों की बहुलता थी और कई गांवों में लकड़ी काटने का निषेध किया गया है। यहां देव—वनों का विकास हुआ है। देवनारायण की स्मृति में वनों का संरक्षण किया गया है। चित्तौड़ और भीलवाड़ा ही नहीं, उदयपुर जिले में भी ऐसे कई गांव हैं जहां पेड़ों को नहीं काटा जाता। वहाँ वृक्षों को बचाने का संकल्प किया गया है। उदयपुर में सेतु का मगरा, साकरोदा, बलीचा, सीड़ आदि गांवों में पेड़ काटना तो दूर, एक पत्ता भी नहीं तोड़ा जाता है। बल्दरखा, बिंदालिया, देवदा, सोनियाणा, सामरिया कला, सामरिया खुर्द, मेनाल आदि दर्जनों गांवों में वनाच्छादित भूमि देखने को मिलती है। यह देवजी की वनी कही जाती है। इन स्थानों पर देवनारायण के देवरे और मंदिर बने हुए हैं। ये वनी बहुत पुरानी है और जहां वनी है, वहां अकाल का प्रभाव कम ही होता है। वहाँ बारिश भी यथेष्ट होती है। हीड़ और बगड़ावत महागाथा में वनी की महिमा मिलती है और वनराज के रूप में देवजी का सुमिरण किया जाता है:

वनी विराज्या देवजी, सबरा सारे काज ।

डाळा—पानां राखियां, पाणी—सांसा साज ॥

अर्थात् — वनी में विराजित देवजी हर किसी के कार्य की साधना करते हैं। वे समस्त इच्छित कार्यों को पूरा करते हैं। उनकी वनी के डाल—पान सहित पेड़ों की रक्षा करने से पानी और श्वास योग्य वायु की रक्षा होती है।

देवनारायण का जीवनकाल महाराणा हमीरसिंह का समवर्ती रहा है किंतु ऐसा नहीं है कि पहले यह परंपरा नहीं थी। वन—वाटिकाओं के विकास की धारणा मेवाड़ में पूर्व से ही रही है। ईसापूर्व अश्वमेध याजिन सर्वतात् ने नगरी (माध्यमिका, चित्तौड़गढ़) में नारायण वाटिका

के लिए परकोटा बनाकर कदाचित इस उपाय को पहली बार देश के सामने रखा था। महारावल तेजसिंह और समरसिंह के शासन काल में लिखे गए अभिलेखों में भी वनक्षेत्रों का उल्लेख आता है। तेजसिंह के शासनकाल में चित्तौड़गढ़ के पास घाघसा में पेयजल ही नहीं, सिंचाई के लिए कूप का निर्माण करवाया गया था। प्रतापगढ़ से प्राप्त 942 ई. के गुहिल खुम्माण तृतीय के अभिलेख में 'कोशवाह', 'कच्छ' जैसे शब्द उन खेतों के लिए आए हैं जिनको चमड़े के चड़स से सींचे और तर रखे जाते थे। (राजस्थान की ऐतिहासिक प्रशस्तियाँ और ताम्रपत्र, पृष्ठ 30-31) वहाँ छित्तुल्लाक नामक खेत का विशेष रूप से जिक्र है जिसमें 10 माणी प्रमाण अन्न को बोया जाता था। इससे पर्याप्त तिलोत्पादन होता था। घास भी पैदा होती, हार के लिए पुष्पोत्पादन किया जाता, सुपाड़ी उत्पन्न की जाती। एक खेत को मोचा के नाम से जाना जाता था जो सम्भवतः सेमल पेड़ों से आच्छादित रहता था और वहाँ से उत्पादित दस मण प्रमाण अनाज वटयक्षिणी मन्दिर को दिया जाता था। वीरपुरा गातोड़ क्षेत्र में 1185 ई. के एक ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि वहाँ सिंचाई के लिए रहटों का प्रयोग होता था। एक रहट को 'ल्हसाडिया' के नाम से जाना जाता था। इससे चावल के खेत को सींचा जाता था। एक रहट का नाम ऊँबरुआ, एक अन्य रहट को ढीकोल के नाम से जाना जाता था। इस काल तक खेत की पहचान उसकी वृक्षावली, घास, ईंधन और जलस्रोत से होती थी। (उपर्युक्त पृष्ठ 46)

उदयपुर के आहाड़ क्षेत्र में कृषि उत्पादन के लिए रहट से सिंचाई की जाती थी। सन् 1206 ई. के एक ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि तब यहाँ दो प्रकार की फसलें ली जाती थीं - 1. हरा (वर्षाकालीन) और 2. सरा (शीतकालीन)। यहाँ वमाउवा नामक रहट था। यहाँ से उत्पादित होने वाली दोनों फसलों में से 9वाँ हिस्सा स्थानीय भायलस्वामी मन्दिर को दिया जाता था। भूमि पर भाग, भोग, कर, हिरण्य जैसी लागतें निर्धारित थीं। यह निश्चित ही यहाँ कृषि उत्पादन के बेहतर होने का साक्ष्य है। (उपर्युक्त पृष्ठ 52)

महारावल तेजसिंह के बारे में आबूपर्वत स्थित महारावल समरसिंहकालीन 1285 ईस्वी की प्रशस्ति में कहा गया है कि उसने अपने शासनाधिकार वाली पृथ्वी को मोती जैसे धान्य उगाने वाली बनाने के लिए उचित रूप से बीजों का प्रबन्ध किया, उसकी सिंचाई के लिए जलस्रोतों का निर्माण और उत्सर्ग किया। यही नहीं, सदगुरु के साधन-निर्देश पर उसने वाटिकाओं का विकास और दानकर पुण्य रूपी फलों को उपजाया - उक्तं मौक्तिकबीजमुत्तमभुवि त्यागस्य दानाम्बुभिः सिक्त्वा सदगुरुसाधनेन नितरामादाय पुण्यं फलम्। (श्लोक 45) इससे पूर्व 1266 ई. के घासा गांव के तेजसिंह कालीन शिलालेख में इस बात का प्रमाण है कि उस क्षेत्र में जौ की पर्याप्त खेती होती थी। अभिलेख के अनुसार गुहड़ा गांव के वाग्दवारिये तालाब के पेटे में होने वाली खेती (पेटा काश्त) और मांकड़थला (मांगथला) के खेतों में पैदा होने वाले जौ को मूड़ी नामक प्रमाण से मापा जाता था। मूड़ी जौ के तौल के टोकरों के लिए विशेष रूप से प्रचलन में था जिसमें दस कलश अनाज होता था। (राजस्थान की ऐतिहासिक प्रशस्तियाँ और ताम्रपत्र, पृष्ठ 54)

तेजसिंह के उत्तराधिकारी समरसिंह ने राज्य में कृषि और वनोत्पादन पर पूरा ध्यान दिया था। उसके लिए आबू की उक्त प्रशस्ति में कहा गया है कि उसके प्रयासों से यहाँ परम निष्ठावानों की तरह वृक्षों का समुदाय समस्त ऋतुओं में फल, पुष्पादि उत्पन्न करने लगे। इसी कारण अर्बुद जैसे पर्वतीय क्षेत्रों में मुनियों की आवाजाही लगी रही। वे मुनिगण प्रायः श्रेष्ठ तपस्वी सिद्ध हुए और विषयवृत्तियों के त्याग के लिए प्रशंसित हुए। (श्लोक 58) समरसिंह कालीन चिरवा की 1273 ई. की प्रशस्ति में कालेलाय नामक जलाशय से सिंचित खेतों के दान का सन्दर्भ आया है। इन खेतों को 'केदार' कहा गया है जिसका आशय है धान्योत्पादन करने वाली भूमि। (वीर विनोद, प्रथम पृष्ठ 389)

महाराणा हमीर ने आम्र वाटिकाओं के विकास पर जोर दिया। समीधेश्वर महादेव की महाराणा मोकलकालीन 1429 ईस्वी की प्रशस्ति में कहा गया है कि उसने सिंचाई के लिए झील का निर्माण करवाया जो सागर जैसी विशाल थी और उसके चारों ही ओर आम्रवाटिकाओं का विकास करवाया था:

अचीखनत् सागरकल्पमल्पेतरत्सरच्छ्रुतवनीभिरिद्धम् ।। (श्लोक 16)

महाराणा लाखा ने जितना ध्यान जावर आदि की खानों से खनन पर दिया, उतना ही ध्यान खेतों की सिंचाई पर दिया। इस बात का पता मोकलकालीन प्रशस्ति से लगता है कि लाखा ने मेवाड़ में सिंचाई योग्य तालाबों का निर्माण करवाया। ये तालाब आज भी 'लाखोला तालाब' के नाम से जाने जाते हैं। ऐसे ही एक तालाब के नाम पर भीलवाड़ा में लाखोला गांव बसा। उदयपुर के पास लखावली में पहाड़ियों के पानी को संग्रह करने के लिए बने तालाब का नाम लाखावाला था जिससे गांव का नाम भी पड़ा। इस काल में तालाबों को कमलों की खेती के रूप में जाना गया। प्रशस्ति में ऐसे जलाशयों की मजबूती के लिए बृहदाकार पाषाणों का प्रयोग करने का विवरण है। (समीधेश्वर मन्दिर की प्रशस्ति, श्लोक 38) महाराणा मोकल का जो विवरण कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति में आया है उससे विदित होता है कि मेवाड़ में ब्राह्मणों ने भी कृषिकर्म आश्रय ले लिया था— विप्रानमितान् हलिं कलयतः कार्श्येन वृत्तेरलम् । (श्लोक 217)

वन और वहाँ के उत्पादन :

मेवाड़ में वन देवियों के नाम पर भी मिलते हैं। इन वनी क्षेत्रों में पेड़ों का विकास उत्तरोत्तर चलता रहता है। चूंकि कोई पेड़ काटा नहीं जाता, ऐसे में पत्तियाँ ही गिर—गिरकर खाद का काम करती हैं और नवीन बीजों को भी महत्वपूर्ण आधार देती हैं। मेवाड़ में यह मान्यता रही है कि वृक्ष पुरुष के पुत्र के समान माने गए हैं क्योंकि पुरुष ने स्वयं ही उन्हें लगाया है, इसलिए वे उसके पुत्र तुल्य कहे गए हैं; पुरुष हमेशा उनके साथ स्नेह का व्यवहार करते हैं और वे वृक्ष उनकी कामनाओं को अवश्य ही परितृप्त करते हैं।

अरावली जिसे अर्वाला भी कहा गया है, के पहाड़ों के ढालों में बारिश अधिक होने से घने जंगल रहे हैं। यहां कभी शेर, बाघ, पेंथर आदि जानवर बहुलता में पाये जाते थे। अनेक जंगली पेड़, घास और बांस आदि खूब होते थे। पेड़ों में आम, जामुन, तेंदु, नीम इमली, गूदां, सागवान, खेर, सेमल, सरजना, महुआ, कगर आदि मुख्य हैं जो मुख्य रूप से फलदार और छायादार हैं। पहाड़ों से बांस, ईधन, इमारती लकड़ी, घास, खनिज, पदार्थ आदि कई उपयोगी चीजें मिल जाती हैं यहां सियालू (खरीफ) और उनालू (रबी) दो प्रकार की फसलें होती हैं। मुख्य फसलों में मक्का और गेहूँ हैं किन्तु यहां जवार, चना, उड़द, मूंग, तिल, सरसों, ईख, कपास, तंबाकू, मूंगफली, मिर्ची, जीरा और धनिया खूब होता है। अफीम की खेती चित्तौड़गढ़ जिले और उससे लगे मालवा क्षेत्र में होती है जो कभी मेवाड़ का हिस्सा था। पहले बेगूं में पान की खेती होती थी, जैसा कि मुंहणोत नैणसी जिक्र करता है। कुछ वर्षों पहले तक कानोड़ के तांबूलपान, खमनोर के चैत्री गुलाब, हमीरगढ़ के तरबूजे, गिर्वा की अरबी, रतालू, सूरण, वालन ककड़ी, जयसंमद के अमरुद, सलूबर की तरोई, पीलादर के टमाटर प्रसिद्ध रहे हैं। सिताफल, बेर और काचरी यहाँ खूब होते हैं। कभी चित्तौड़गढ़ क्षेत्र में सेम—राजमा की खेती खूब होती थी, जैसा कि 6वीं सदी में वहां की यात्रा पर आए चीनी यात्री ह्वेनसांग ने संकेत दिया है। अरावली वनक्षेत्र में अनेक प्रकार की वनौषधियां और जड़ी-बूटियां होती हैं।

मेवाड़ में महाराणा कुंभा कालीन कृषि उत्पाद :

मेवाड़ में महाराणा कुंभा के शासनकाल (1433—68ई.) में वाटिकाओं के विकास पर जोर दिया गया। कुम्भा ने नागौर क्षेत्र को यवनों से मुक्त करवाकर गोचरभूमि के रूप में छोड़ा ब्राह्मणों को हांकने के लिए प्रदान कर दिया था। तं गोचरं नागपुरं विधाय चिराय यो ब्राह्मणसादकार्षीत्। (कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति, श्लोक 21) यह जीती गई भूमि पर कृषि करवाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण पहल थी। तत्कालीन ग्रंथों में राजवल्लभ वास्तुशास्त्र वास्तुमण्डन आदि में महलों, हवेलियों के साथ—साथ नवीन नगरों में भी वाटिकाओं के विकास और उनको सदा शस्य श्यामला बनाए रखने के लिए जलयंत्रों की स्थापना पर जोर दिया गया है।

इस काल में मेवाड़ में खेती से उत्पन्न होने वाले धान्यों की बड़ी सूची महाराणा रायमल कालीन 1495 ई. के 'एकलिंगपुराण' में प्राप्त होती है। इसका प्रयोग खाद्य—आहार के रूप में होता था। मेवाड़ में इस काल तक अनेक प्रकार के चावल उत्पन्न होते थे। इनमें साल के चावल, काली साल के चावल, सुगंधी साल के चावल, राजोरा की साल के चावल, वागडया चावल, चक्रोदरी साल के चावल, कामोद के चावल, श्वेत चावल और साठया चावल सहित चक्रोदरी अर्थात् जिनके ऊपर चक्र के चिन्ह हो जिनसे पौहा बनाए जाते थे, मेवाड़ में उपलब्ध होते थे। इसी प्रकार दाल के रूप में मूंग का प्रयोग होता था और यह पर्याप्त उगाया जाता था।

मूँग की दाल जो धोई हुई और बिना छिलकों की होती थी, उसे उत्तम माना जाता था और छिलकों वाली मूँग की दाल मध्यम मानी जाती थी। इसी प्रकार तुअर की दाल और चने की दाल सहित अन्य दालें भी यहां उपलब्ध थी। यहां तरकारियाँ चार प्रकार की होती थीं और नैवेद्य के रूप में भी उनका उपयोग किया जाता था। यथा—1. ताड़ित (जिनको तला जा सके अर्थात् छोकदार), 2. भर्जित (जिनको भूँजा जा सके), 3. रंधित (जिनको रँधी जा सके) और 4. वाष्पित (जिनको भापा या उबाला जा सके)। शिंभ्यादि (साँगरी, वल्ल) फलों की सब्जियाँ घी में पकाकर बनाई जाती थीं, वे ताड़ित कही जाती हैं। अन्य जो श्रेष्ठ फल होते, उनको घी में भूँजकर तैयार किया जाता है, उनको भर्जित (भूँजित) शाक कहा जाता है। चावल की पापडियाँ सहित अन्य जो पापड़ होते हैं। उनको भी भूँजा हुआ कहा जाता है। वास्तुक (बथुआ, बाथला) आदि जो पत्र वाली सब्जियाँ होती हैं, वे रँधी हुई कही जाती थीं।

इसी प्रकार रतालु, पिण्डालु (शकरकन्द, सूरण) आदि भूमिकन्द की सब्जियाँ भापी गई कही जाती हैं। लशुन (लहसुन) का उत्पादन भी होता था। खान-पान में पानक योग के लिए नींबू आदि खट्टी वस्तुओं और नारंगी जैसे फलों का उत्पादन किया जाता था। दाख, पिण्डखजूरादि सहित नींबू, नारंगी, केला, पनस आदि में आठवें भाग इमली मिलाकर और अन्य द्रव्यादि डालकर पणा तैयार किया जाता था। नींबू, अदरक, केरी, कन्द-मूल, केला कौशातकी (तोरई), कर्कटी (ककड़ी), धात्री (आँवला), बिल्व (बेल), करीर (केर) इत्यादि का उत्पादन सन्धानक (अथाणा, अचार) के लिए किया जाता था और भोजनोपरान्त ताम्बूल सेवन की परम्परा के क्रम में यहाँ पान उत्पादित किया जाता था। (एकलिंगपुराण 19, 73-103) यह बहुत रोचक है कि यहाँ इतने धान्यादि उत्पादित किए जाते थे। निश्चित ही ये यहाँ समृद्ध कृषि उत्पादन के परिचायक हैं। वैसे घोसुण्डी की बावड़ी की प्रशस्ति में वहाँ पर केला, आम, पनस आदि के उत्पाद का सन्दर्भ मिलता है (राजस्थान की ऐतिहासिक प्रशस्तियाँ और ताम्रपत्र, पृष्ठ 201)

महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर को बसाया और वहाँ वृक्षों को उगाने पर पूरा ध्यान दिया। यह निर्देश मत्स्यपुराण की उस परम्परा की ओर संकेत करता है जिसमें कहा गया है कि राजा को प्रत्येक बस्ती में उपयोगी वृक्षों के आरोपण का निर्देश दिया गया है: राजा संचिनुयात् सर्वं पुरे निरवशेषतः ॥ (मत्स्यपुराण अध्याय 217) हालांकि इस काल में कृषिकर्ताओं को गिर्वा क्षेत्र में ताम्रपत्रीय प्रतिज्ञावचन सहित भूमिदान भी किया गया। मोलेला गाँव में शिव नामक रहट वाला खेत देने का उल्लेख एक ताम्रपत्र में मिला है। इस समय उदयपुर में नारियल, पनस, आम आदि वृक्षों को पर्याप्त रूप से लगाया गया था। ये पेड़ इतने अधिक हो गए थे कि उनकी संख्या की गणना कर पाना कठिन था— सन्नारिकेल पनसाम्न सुवृक्षबीजै एतत् प्रभा तरव एवं बभूवुरित्थम्। (अमरसार यशखण्ड 55)

महाराणा प्रतापकालीन कृषि नीति:

महाराणा प्रताप के शासनकाल में लिखे गए 'विश्व वल्लभ' ग्रंथ में खेतों और वाटिकाओं के नियोजित विकास पर जोर दिया गया है। पारिस्थितिकी सन्तुलन बनाए रखने के लिए इस काल में कृषि और वृक्ष विद्या को प्रश्रय देने का प्रयास हुआ। विश्ववल्लभ को मध्यकालीन भारत का पर्यावरण और कृषि शास्त्र माना जा सकता है और विश्व को पर्यावरण के क्षेत्र में यह अपूर्व योगदान है। इसमें नौ अध्यायों (उल्लासों) में भूमिगत जलशिरा, जल शुद्धि, बाँध—कुण्ड आदि जलस्रोतों के निर्माण, वृक्षारोपण विधि, वृक्षों की पौषण तकनीक, रोगी वृक्षों की चिकित्सा की विधियाँ, वृक्षों की रक्षा, विचित्र पौधों को तैयार करना, बीजोपचार जैसे महत्वपूर्ण विषयों को लिखा गया है।

विश्ववल्लभ से महाराणा प्रताप की कृषि नीति का पता चलता है। तत्कालीन जनसामान्य में आत्मनिर्भरता के लिए कृषि, फलोत्पादन की प्रचुरता को जरूरी माना जाता था और प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के अनुसार अनूप, जांगल, मिश्र और पर्वतीय प्रदेशों के आधार पर जो उचित हो, वैसी खेती—बाड़ी करना उचित माना गया था। यह ज्ञातव्य है कि महाराणा प्रताप ने उस दौर में कृषि नीति का प्रवर्तन किया और कृषि उन्नयन पर जोर दिया जब युद्ध के बाद के हालात थे, जनता या तो दरबंद थी या फिर हालात सतत मुगल आक्रमणों से पदाक्रान्त थे। मैदानी इलाकों में खेती के न तो हालात थे और न ही खेती सम्भव और निरापद थी। 'दैवं वा कर्षणम्' अर्थात् भाग्य अथवा कृषि अथवा 'देवता रा वर चाले अर करसा रा हल' इस कहावत के आधार पर खेती की महत्ता को मेवाड़ में समझा जाता रहा है।

प्रताप ने नकदी फसलोत्पादन पर ध्यान केन्द्रित किया। यइ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण था कि तब नकद लेन—देन अपेक्षाकृत कम था और सिक्कों को ढालने के लिए टकसाले बन्द हो चुकी थीं। ऐसे में राज्य की आत्मनिर्भरता के लिए खेती और खदान ही मुख्य आधार थे। बारम्बार हमलों के दौर में भूमि का कोई छोर कृषि के लिए उपयुक्त नहीं बचा तब वृक्षों को स्थायी या दीर्घकालीन उत्पादन प्रदायक माना जा सकता था। गांव के गांव खाली करवाकर लोगों को अपेक्षाकृत निरापद मालवा की ओर सुरक्षा के लिहाज से भेजा जाता था, जैसा कि 'वीर विनोद' संकेत देता है। ऐसे में युद्ध को टालने के साथ ही वनबहुल फलोत्पादन पर विचार बहुत उपयुक्त था। यँ ही मेवाड़ जनजाति बहुल रहा है और जंगल में बसे लोग जंगल के उत्पाद को एकत्रकर जीवनयापन करते रहे। जन सामान्य के लिए कृषि अथवा वनोपज आजीविका का मुख्य साधन रहा है।

विश्ववल्लभ में पेड़, पौधे, वृक्ष, गुल्म—लता, विरुध, त्वक आदि वनस्पतियों से होने वाले फलोत्पादन को दृष्टिगत रखा गया है और उनके श्रेष्ठ फल प्रदायक होने के लिए अनेक बातें पालनीय बताई गई हैं। यथा—

1. कृषिकार्य के लिए श्रेष्ठतम बीज उपलब्ध हों और बीजों का उचित उपकार करके ही बोया जाना चाहिए । बीजों में किसी भी प्रकार की मिलावट नहीं की जाए, यह मनुस्मृति का भी निर्देश रहा है ।
2. उर्वरक, खाद पर उत्पादन का बहुत प्रतिशत निर्भर करता है, अतः पुरीष (गोबर आदि खाद), कुपण जलादि (विशिष्ट प्रकार के सहज-साध्य उर्वरक) विधियों को अपनाया जाए और राजकीय स्तर पर इसे प्रचारित और प्रोत्साहित किया जाए ।
3. खेती-बाड़ी की समयबद्ध सिंचाई के लिए उचित प्रबन्धन हों । नगर, ग्रामानुसार सिंचाई के लिए जलस्रोतों का विकास किया जाए और पेयजल और सिंचाई के लिए प्रदूषण रहित पानी का उपयोग किया जाए ।
4. खेती में विचित्रीकरण जैसे प्रयोग इसलिए भी हों कि किसान, जनता उन प्रयोगों से लाभान्वित हों और विशेष प्रयोगों को देखकर प्रेरणा प्राप्त करें ।
5. कृषि क्षेत्र और बगीचा आदि को उजाड़े जाने पर पुनः रोपण की अपेक्षा जो वृक्षादि नष्ट हो गए हों, उनको ही पुनः जीवित और फलदायी बनाने का प्रयास किया जाए, इससे समय की बचत होती है । इस कार्य पर निरीक्षणात्मक दृष्टि रखी जानी चाहिए ।
6. फसलों, पेड़-पौधों में होने वाली इति-व्याधि, रोगों के उपचार तथा आन्तरिक और बाहरी कीटों के नियन्त्रण के लिए तत्काल और प्रभावी उपाय किए जाएँ ताकि उत्पाद प्रभावित नहीं हों ।

प्रताप के काल में कृषि विकास का सम्बन्ध तत्कालीन आबादी की आवश्यकता की पूर्ति से ही नहीं, आबादी द्वारा समय-समय पर बदले जाने वाले आवास (मुकाम) और शासकीय स्कन्धावार (विजय कटक रा डेरा, छावनियों) के महत्व अथवा नगर आदि बस्तियों के विकास के साथ-साथ हवाला खेती (शासनाधिकृत खेती) भी जुड़ा हुआ दिखाई देता है । ऐसे में खेती चूंकि मूलतः वृष्टि आधारित रही है तो वृक्ष चिरकाल पर्यन्त उत्पाद दे सकते हैं अतः फलदायी वृक्षों की वाटिकाओं के विकास पर ध्यान दिया गया । इस काल में कृषि के विकास के लिए रोग रहित, उन्नत और उपचारित बीजों का उपयोग पर जोर दिया गया वहीं कृषि क्षेत्र के विस्तार पर भी ध्यान दिया गया । सिंचाई सुविधाओं के विस्तार को प्राथमिकता दी गई । खाद व कृमि-कीटादि नाशक औषधियों को प्रयोग भी किया गया । कलम लगाकर विचित्र फलोत्पादन करने की विधियाँ भी प्रचारित की गईं ।

इसी ग्रन्थ से विदित होता है कि मेवाड़ में कपास उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया गया था । कपास की खेती के लिए कपासन को विशेष पहचान मिली और उसके पास ही गोदियाणा जैसा गाँव महाराणा प्रताप द्वारा दान करने का ताम्रपत्र भी प्रकाश में आया है । इस समय कपास के फूलों को पीला, लाल और नीला करने के प्रयोग भी किए गए । मेवाड़ में कृषि में

किसी प्रकार के प्रयोग का पहला साक्ष्य विश्ववल्लभ से ही सामने आता है। बिजली के गिरने से नाकारा माने गए वृक्षों से फल उत्पन्न करना, बांझ वृक्षों को फलदायी बनाना और वृद्ध वृक्षों से फल लेने जैसे प्रयोग की सफलता इस काम को बड़ी विशेषता है। इसी काल में शाक-सब्जियों की पैदावार बढ़ाने और प्रजातियों के विकास के प्रयास भी हुए। बिना गुठली और बिना अस्थि के गाजर आदि उत्पाद लेने के प्रयोग किए गए। अधिकाधिक तिलोत्पादन सहित जौ, दाल और सरसों ही नहीं अनेक प्रजाति के पुष्पों की पैदावार में इजाफे के अनुभव आधारित प्रयोगों-योगों को लिखता हुआ ग्रंथकार चक्रपाणि मिश्र यह स्वीकारता है कि वह व्यावहारिक विधियों को ही लिख रहा है।

परवर्तीकाल में कृषि उत्पाद और प्रयोग:

विश्ववल्लभ ग्रन्थ के आधार पर राणा प्रताप के शासनकाल में तो मेवाड़ में वाटिकाएँ, बगीचे, बाडियां आदि तो बनी हीं, परवर्ती शासकों ने भी इसमें रूचि दर्शाई। यहां समय-समय पर अन्य प्रदेशों से आने वाले राजदूत अपने साथ बीज, पौध आदि लेकर आए। उदयपुर में ऐसे कई पेड़ हैं जो मेवाड़ मूल के नहीं हैं लेकिन यहाँ की जलवायु ने उनको लगाने के बाद पनपने में सहयोग किया।

महाराणा अमरसिंह (1597-1615 ई.) के समय मेवाड़ में चावलोत्पादन पर्याप्त रूप से होता था। तुष या छिलके सहित होने वाले चावल शालि या साल कहे जाते थे और उनके छिलकों का हटाने के लिए ओखल में कूटने जैसा काम घर-घर किया जाता था। ये चावल चन्द्रमा की कान्ति के समान चमकीले होते थे अथवा उनको 'चन्द्रकान्तिशितशालि' कहा जाता था, यह स्पष्ट नहीं है लेकिन विशेषता के आधार पर नामकरण पर विश्वास किया जा सकता है। इस काल में चावलों को बल प्रदायक कहा गया है। इसी समय सब्जी के लिए दालों का पर्याप्त उत्पादन होने लगा था। निश्चित ही ये दालें उड़द और मूंग की रही होंगी। (अमरसार, यशखण्ड 361-362) इसी प्रकार तिलोत्पादन, हल्दी की खेती और गन्ने की उपज खूब होती थी। तिलों से तेल निकालने के लिए घाणी यन्त्र गांव-गांव थे और हल्दी को चूर्ण बनाने के लिए कूटक और चक्कियाँ तथा गन्ने को पेरने के लिए चरखियाँ खूब थीं। ये यंत्र क्रमशः काष्ठ और पाषाण के होते थे। (उपर्युक्त 32-33) इसी प्रकार इस काल में मेवाड़ में दाडिम, द्राक्षा, खर्जूर, आम, नींबू, कुष्माण्ड या कद्दू पर्याप्त रूप से होते थे और इनका आहार के रूप में खूब उपयोग होता था। (उपर्युक्त 357)

महाराणा राजसिंह के शासनकाल में जबकि राजसमन्द का निर्माण हुआ, तब उसकी नींवों को खोदने से जो जल रहटों से खींचकर बाहर निकाला गया, उससे किसानों को लाभ देने का प्रयास हुआ और वितरिकाएँ बनाकर उस जल को आसपास के गाँवों के खेतों तक पहुंचाया गया। राजप्रशस्ति में आया है कि उक्त पानी को बड़े-बड़े धोरों (नालियों नहरों) के माध्यम से (सदुपयोगार्थ) लोग अपने ग्राम-ग्राम ले गए। इससे कृषि उपज बढ़ने से वे ग्राम अब नगरों के रूप वाले हो गए। जिस तरह ज्योतिष शास्त्र में कोई निर्धारित दिवस

ज्ञात करने के लिए तालिका को श्रेष्ठ साधन माना जाता है, वैसे ही उक्त पानी को प्राप्त करने के लिए ग्रामीण लोग अपनी बारी सिंचाई के लिए नहर में पानी छोड़ने के दिन के लिए तालिका (समय सारिणी) जैसा श्रेष्ठ साधन काम में लेने लगे। (राजप्रशस्ति 10, 30-31)

इसी काल में कृषि की सफलता के लिए वर्षा के अध्ययन पर विशेष जोर दिया गया और इसके लिए पुराहित गरीबदास की आज्ञा से संवत् 1746 वर्ष वैशाख सुदी 11 (अप्रैल, 1689 ई.) को 'गार्गीसंहिता' जैसे ग्रन्थ का सम्पादन किया गया। उसकी उक्तियों के आधार पर वृष्टिविचार किसानों के हित में किया जाता था। यथा— आषाढ मास में द्वादशी, प्रतिपदा और पूर्णिमा के दिन यदि बहुत पवन प्रवाह होता है तो सर्वत्र और शीघ्र ही वृष्टि होती है— आषाढे तु यदा मासे द्वादशी प्रतिपदिने । पूर्णिमास्यां यदा वश्यं महावातं विनिदेशत् ।। सर्व एव भवेन्नित्यं देवो वर्षति शीघ्रतः ।। (मयूरचित्रम् परिशिष्ट गार्गीसंहिता, श्लोक 220-221)

इस काल तक मेवाड़ में तम्बाकू की पर्याप्त खेती होने लगी थी और आकोला जैसे गाँव में उसके ठेके होने लगे थे। टॉड ने वहाँ से प्राप्त एक शिलालेख का जिक्र किया है जिसमें राजसिंह के शासनकाल में उक्त ठेका उठा लेने की आज्ञा दी गई है। इसी तरह हल्दीघाटी क्षेत्र में चेत्री गुलाबी की खेती बड़े स्तर पर की जाने लगी थी जो आज तक निरन्तर है। राजसिंह के शासनकाल में समस्त ऋतुओं की छटा प्रकट करने वाले 'सर्वऋतु विलास' नाम से वाटिकाओं के विकास की परम्परा देखने को मिलती है। इसी काल में उदयपुर के चारों ओर जलाशयों के निर्माण का कार्य व्यापक पैमाने पर हुआ और यह काम लगभग सौ सालों तक निरन्तर रहा।

महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के शासनकाल, संवत् 1791 तदनुसार 1734 ई. में पहली बार मेवाड़ में मक्का की खेती आरम्भ हुई। मेनार गाँव में यह प्रयास हुआ और उसके बीज आगरा-मथुरा क्षेत्र से यहाँ पहुँचे थे। खूब बढ़िया पैदावार हुई और तब जो नारा शुरू हुआ, वह आज तक मेवाड़ में कृषि का नारा बना हुआ है : गऊँ छोड़ ने मक्की खाणों, पण मेवाड़ छोड़ नै कटैई नी जाणो। इसी तरह महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) के शासनकाल में पहली बार मेवाड़ बाठरड़ा कलां के पास हवाले में रिजका उगाया गया। इससे अश्वों को महत्वपूर्ण खुराक मिलनी शुरू हुई। वहाँ आज भी रिजका का कुआं नाम से एक गाँव बसा हुआ है।

कानोड़ ठिकाने की पहल पर गाँव में तम्बोलियों ने नागवल्ली या ताम्बूल पान की खेती प्रारम्भ की। यहाँ का पान बरसों तक लोगों की पहली पसंद बना रहा। यह मालवपर्ण के नाम से भी जाना जाता था, जिसके लिए ताम्बूलमंजरी में कहा गया है कि यह नागवल्ली अम्लरस वाली, तीक्ष्ण, मधुर, रुचिकरी, हिमा, दाह दूर करने वाली, पित्त को बढ़ाने वाली, दीपनकारिणी, बलवर्धक, मुख को सुगन्ध देने वाली, समृद्धि व सौभाग्यवर्धिनी, मदकारिणी, राजाओं को सदा प्रिय, प्लीहा, उदर-स्फीति और कब्ज को दूर करने वाली होती है—

नाम्रा याम्लरसा सुतीक्ष्णमधुरा रूच्या हिमा दाहनुत्
पित्तोद्रेकहरा सुदीपनकरी बल्या मुखामोदिनी ।

श्रीसौभौग्यविवर्धिनी मदकारी राज्ञां सदा वल्लभा
गुल्माध्यमानविबन्धजिज्व कथिता सा मालवे मु स्मृता ।।

(ताम्बूलमंजरी 85)

महाराणा अमरसिंह के शासनकाल में ताम्बूल में सुपारी ,कपूर और अमरपुष्प या लवंग रखकर चबाया जाता था। प्रायः भोजन के बाद ताम्बूल सेवन की परम्परा रही है (अमरसारः पूर्वानुसार 365–366) पान का बीड़ा झेलाने के कई प्रसंग इतिहास में मिलते हैं, इससे प्रतीत होता है कि यहाँ पान का व्यापक व्यवहार था। वैसे महाराणा कुम्भा के काल में ताम्बूल के प्रयोग का संकेत एकलिंगपुराण में मिलता है— ताम्बूलं च ततोऽर्पयत् ।। (19, 103)

महाराणा सज्जनसिंह के शासनकाल (1874–84ई.) में उदयपुर में ‘सज्जन निवास उद्यान’ को विकसित करने का कार्य हुआ। तत्कालीन इतिहासकार और महाराणा के परामर्शद कविराजा श्यामलदास दधिवाड़िया की आज्ञा से कोटेश्वर दशोरा ने ‘वाटिका विधि’ को लिखा। प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में मौजूद इसकी पुष्पिका में आया है : श्रीमार्तण्ड वंश मौलिमणि महाराजाधिराज श्री महाराणेंद्र श्री 108 श्री सज्जनसिंहहानामाज्ञानुसारेण कविकुलोदभव दधिवाडिरून्वयोत्पन्न सांवलदासानुमत्या ब्राह्मण दशोरा कोटेश्वरेण लिखितेदं पुस्तकं । संवत् 1934 आषाड सुदी15 (श्लोक 225)

मेवाडी भाषा में लिखी गई इस पुस्तक के आरम्भ में अग्निपुराण के श्लोकों को लिखा गया है जो मेवाड़ में पारिस्थितिकी संतुलन के वाटिकाओं के महत्व और मेवाड़ में उनके क्रमिक विकास को परिभाषित करते हैं :

अथ वाग का चेटा लगावा कि क्रिया । धन्वतरि बोले कि अब वृक्षायुर्वेद को कहूंगा । पाकरि उत्तर दिशा में, पूर्व में बरगद, दक्षिण में आम्र और पश्चिम में पीपल को लगाया जाना शुभ है । दक्षिण दिशा में काँटे वाले वृक्ष समीप में शुभ है । गृह के वाम भाग में उद्यान होना चाहिए । उद्यान में तिल या फूल वाले वृक्षों का रोपण किया जाना चाहिए । रोपण से पूर्व ब्राह्मण और चन्द्रमा की पूजा करनी चाहिए । वृक्षों के आरोपण, ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी व रेवती) अभिजित्, हस्त पूर्वाषाढा शतभिषा और मूल नक्षत्रों में होने चाहिए ।

इसमें सिंचाई के लिए उचित प्रबंधन पर जोर देते हुए कहा गया है कि उद्यान में नदी के प्रवाह का प्रवेश करवाया जाए अथवा एक वापी बनवाएं । पुष्करणी बनवाने के लिए हस्त, मघा, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा और तीनों उत्तरा नक्षत्र उत्तम माने जाते हैं । जलाशय बनवाने से पूर्व वरुण, विष्णु और पर्जन्य की पूजा की जानी चाहिए । अरिष्ठा, अशोक, पुंनाग, शिरीष या सरस सहित प्रियंगु, आशापालक, केला, जामुन, बकुल तथा

दाडिम के पौधे रोपण योग्य माने जाते हैं । वर्षा के प्रारंभ में सायंकाल और प्रातःकाल वृक्षों को आरोपण करें और शीतकाल में दिन के अन्त में वृक्षारोपण किया जाना प्रशस्त है । साथ ही वर्षाकाल में रात्रि में वृक्षारोपण किया जाना उचित है । पृथ्वी के सूख जाने पर पेड़ों की सिंचाई करनी चाहिए ।

वाटिकाओं में वृक्षों के बीच कितना अंतराल हो, इस संबंध में कहा गया है कि वृक्षों का एक से दूसरे से अन्तर बीस हाथ पर उत्तम माना जाता है, सोलह हाथ का अन्तर मध्यम और बारह हाथ का अन्तर अधम माना गया है । वृक्षों का रोपण अति निकट—निकट नहीं करना चाहिए । घने वृक्षों में फल नहीं लगते । वृक्षों के आरोपण के पहले शस्त्र से जमीन पर गड्ढा बनाकर उसकी शुद्धि की जानी चाहिए । जिस गड्ढे में वृक्ष लगाया जाए, उसे जल से भर दें और उसमें वायविडंग का चूर्ण घृत में मिलाकर छोड़ दें, इससे भूमि शुद्ध हो जाती है । जिस वृक्ष का फल लगकर झड़ जाता हो, उसकी जड़ में कुलथी, उड़द, मूँग, तिल और यव के चूर्ण से मिश्रित शीतल जल से सिंचन करें तों नित्य पुष्प और फल से लदा रहेगा । इसी तरह भेड़ व बकरी की मँगनी का चूर्ण यवा का चूर्ण और तिल का चूर्ण घृत से सान कर शीतल जल में मिला दें और उससे वृक्ष को सींचने से फल लगते हैं । सात रात तक जल में गोमांस रख दें और उससे वृक्ष को सींचने से सभी वृक्ष पुष्प व फल से लदे रहते हैं मछली के धोवन जल से सींचने पर वृक्षों की वृद्धि होती है और वायविडंग, चावल तथा मछली का मांस वृक्षों के लिए दोहद तुल्य है तथा सामान्य रूप से सभी वृक्षों के रोगों को दूर करने वाला है । इसी प्रकार के वृक्ष—विशेष के लिए रोगों का शमन किया जा सकता है । पलाश के पुष्पों को सुन्दर तथा सुगंध युक्त किया जा सकता है । व्याधियों, विषादि को दूरकर वृक्षों को चिरायु, सरस व श्रेष्ठ फलान्वित किया जा सकता है ।

इसी ग्रंथ में मेवाड़ी बोली में वाटिकाओं के विन्यास और नियोजन पर कई उपायों पर भी प्रकाश डाला गया है :

यथा वागाते की क्रिया कौतुकचिंतामणे मछ सो तो न्यारी छे । अर या क्रिया अग्निपुराण में ली लीखी छे । वाग लगावे जठ पारस पीपल तो उत्तर की त्रफ शुभः । पूर्व ने वड लगावजे । दक्षिण दिशा आंब लगावजे । पश्चिम दिशा पीपली लगावे । तथा कांटा वाला वृक्ष दक्षिण का क्यारा में लगावजै । अर हवेली में वाग लगावे तो हवेली सूंनी सरतां बाई त्रफ लगावजै । सो ब्राह्मण की , चंद्रमा की पूजा कर लवावै । वृक्ष यां नक्षत्रा में लगावै— रोहिणी, तीनु उत्तरा, स्वाति, हस्त, पूर्वाभाद्रपद, आर्द्रा श्रवण, मूल— एता नक्षत्र लीजै । अर नहर पाणी की होय तो नीकां तथा तलाव की मोरी नीचे लगाजै । अरु वाग वासते नीवांण करावे तो या नक्षत्रों में कराजै — हस्त, मघा, अनुराधा, पूर्वाभाद्रपद, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तरा तीनु । अब नीवाण करता वास्तु की, वरुण की पूजा कीजै । अब रती आवे तीं में या रीति सींचे अरडीठो, आसापालो, नागचम्पो, सरसि, आम्ब , केलि, जामूण बोलसरी, दाडिम, इनकौ ग्रीष्म में दो बार सींच जै । सीत काल में येक दिन के आंतरे सींचे । वृषा रतू में पृथ्वी सूकी देखे जद सींचे । अरु वीस हाथ के अंतर वृक्ष लागे सो उत्तम, सोला हाथ के अंतर वृक्ष लागे सो

मध्यम। बारा हाथ के अंतर वृक्ष लागे सो अधम जाणजै। अरू वृक्ष न कों एक जगा सो उपाडि दूसरी जगां लगाजे तो नीका। वृक्ष सघन होय तो साखा काटबो कीजै।

अब निरफल होय तिन को इलाज— वायविडंग, घृत ते जड में दे पाछे जल सीचे तो फल—फूल लागि झडि पडै तो इलाज। कुलथ, उडद, मूंग, जव, तिल, घृत, यां करि जड में देय पाछे जल सींचे तो फल—फूल सदा आवै। अरू जिण वृक्ष कैं फल—फूल बडा नहीं होय तो छाली की मींगणी को खात, जव को चून, तिल को चून..... इन कुं पाणी में दिन ७ जावो करि जड में दीजे। तथा रोग जावे का उपाय— वायविडंग, माछली को मांस यां ने मिलाय जड में दीजे तो रोग जाय।

इसी लघुकाय ग्रंथ में वाड़ी के फलने के लिए की जाने वाली क्रिया पर भी प्रकाश डाला गया है : गूगल लीजे, मोरपगी लीजे, नागरमोथो लीजे, सो यां कू कूट घी मिलाजै, दीतवार री रात वस्त्र हीण होय धूप दीजे तो वाड़ी फलै। पुनः थावर के दिन अरध बिम्ब में कुंभार की लोढी नौत्याजे, अर्ध राति समें त्यार धूप देर वाड़ी में धरि दीजै तो वाड़ी बहोत फलौ। कुवा का ढाणा सारण के मध्य होद रहे जीमें पणो गल्यां खात नाखे सो नाख्यां सम भाग जल की साथ सरीखों पोच थोडाक् अरसा पाछे धरती बदले छे, पोटली तथा जोग मुसाला की क्यारा—क्यारा पर नलवो मे गांठ धरीजे उदेई रो भय नहीं हींग वावा के वास्ते बीज चोपडी जे, भांग के क्यारा केसुली मींगफल अंतमीसष्टंन मेथी के अंत भीलामा तमाखु के इत्यादि जथा जोग। (वृक्षायुर्वेद : सम्पादक श्रीकृष्ण जुगनू, चौखम्बा संस्कृत सिरीज ऑफिस, वाराणसी, परिशिष्ट)

कहना न होगा, मेवाड में पर्यावरण को बनाए रखने और उसके निरंतर संवर्धन के लिए जहां शासकों ने पर्याप्त ध्यान दिया, वहीं प्रजा ने भी पग—पग पर निर्देशों का पालन किया। इसलिए जहां गांव—गांव बाडियों का विकास हुआ और नाडियों ओर वन—वनी का भी पल्लवन होता रहा। यहां के अभिलेखों में वृक्षावलियों, कूप—वापिकाओं का सुंदरतम वर्णन पर्यावरण के प्रति प्रजा के रक्षक भाव का ही प्रदर्शन करता है।

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

फैलो इण्डोलॉजी

महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन वार्षिक सम्मान — 2008 के

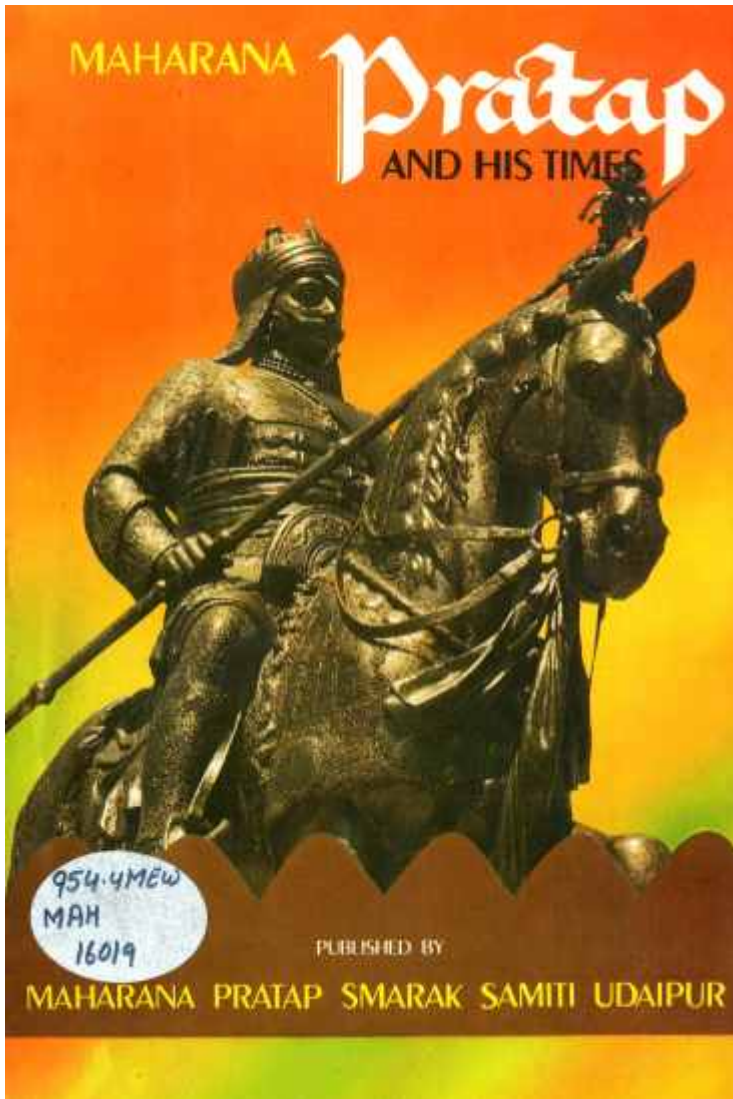
महाराणा कुम्भा सम्मान से सम्मानित

निवास: विश्वाधारम्

40, राजश्री कॉलोनी, विनायकनगर

उदयपुर 313001 राजस्थान

MAHARANA PRATAP AND HIS TIMES
————— *1989* —————



This document is extracted from the book titled

'Maharana Pratap and his times'

Convenors: Dr. G.N. Sharma and Shri M.N. Mathur

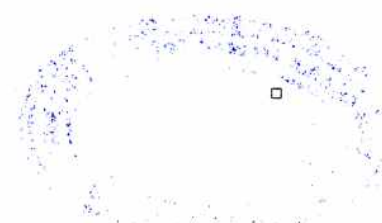
Published by Maharana Pratap Smarak Samiti, Moti Magri, Udaipur

RAJAT JAYANTI
SOUVENIR
1989

MAHARANA PRATAP
&
HIS TIMES

CONVENORS

DR. G. N. SHARMA
SHRI M. N. MATHUR



Published by :
MAHARANA PRATAP SMARAK SAMITI
Moti Magri
UDAIPUR - 313 001

PRICE Rs. 100/- ONLY

Chakrapani Mishra, a Court-Pandita of Maharana Pratap and his works

Dr. B. M. Jawalia

Keeper, Mss. & Printed Books

M. S. Mansingh II Museum, Jaipur

Maharana Pratap is remembered for his valour, and patriotic deeds. He showed his courage and pugnacity in the wars he waged and fought for a couple of decades against his mighty foe Akbar, the Emperor of India, whom he always considered as an intruder and took oath not to surrender or to strike his flag before him. He was an embodiment of great virtues and values established in Indian tradition through renunciation, austerity, honesty to the axioms and stuck to them without shirking from his duty even in the face of heavy odds.

Being deprived of his home land, he had to take shelter in the dense forests and caves and caverns in the hills and dales of southern Rajasthan, and as such it is but natural to assume that he could not have find time and opportunity to devote himself to the administrative, academic, economic and social development of his state. But when we go through the literature of his era we find that even under such adverse circumstances he did not give up the hope to re-conquer his kingdom and had certain ideas and plans to redevelop all those aspects.

It seems that a number of persons were engaged under his orders to plan his ideas—Chakrapni Mishra was also one of them, who was assigned to the work of preparing a treatise on various branches of learning and science. He composed a work under the title '*Vishva Valalbha*' in 1634 V. S. (1577 A.D.), as is mentioned by S. R. Bhandarkar in his 'Survey Report of the search of Manuscripts in Rajasthan', which he came across in the possession of one Champalal Sutradhar of Udaipur, a descendant of Mandan, the royal architect of Maharana Kumbhakarna of Mewar.

'*Vishva Vallabha*' is divided into nine chapters (ullasas) dealing with the following subjects.

1. *Udaga (ka) rgala-Nirupana*—It is a work dealing with the process of examining the ground in searching for water, and rules for ascertaining the sources of water, on the basis of various types of soils, rocks, vegetation, under various tracts like Anupa (marshy or swampy tract abounding in a large number of pools, traversed by a net of rivers and overgrown with forests) jari gala (open wilderness with scarcity of rivers and rivulets, or water resources in general), and marubhumi (deserts);
2. digging of various types of wells, step wells, ponds, tanks, and construction over these;
3. methods of blasting the hard rocks, by heating the same with the help of burning hard woods, sprinkling of chemicals mixed with water;
4. methods of hardening the edges of chisels to be used in digging wells;
5. methods of purification of sour and hard waters with the application of various powers of vegetations in it;
6. analyses and tests of various types of soils, and plantation of various kinds of trees, plants, and creepers suitable to them;
7. Process of plantation etc;
8. Watering, sprinkling or water or irrigation of plants, trees etc. according to the climatic conditions;
9. Protection of plants and trees from strong winds, hurricanes, snowfall, fumes, fire, insects and diseases, erection of supports to the plants and creepers, eradication of weeds, grass and unnecessary shrubs and bushes around the plants and trees; application of insecticides and spells or incantations for the protection and preservation of plants; process of fencing etc.;
10. application of various types of manures and fertilizers and fostering medicines;
11. diagnosis of ailments and their treatments with prophylactic

and curing medicines, treatment of plants in healthy and diseased conditions;

12. various experiments in connection with the inter-changing of colours, tastes, odours, flavours etc. of the flowers, fruits and petals of the plants, trees, and even in their species.

By going through the above work we can very easily get the impression that science and technology received the fullest possible attention and utilization, through the establishment of several government departments charged with one or many technical subjects, for effectively running the government administration.

Other works of Chakrapani are : (1) *Rajyabhiseka paddhati*, and (2) *Muhurtamala*. *Rajyabhiseka paddhati* is a compilation of various customs adopted at the time of coronation ceremony of the Rajput rulers, picked up from various religious treatises e.g. *Manusmrti*, *Ramayana*, *Mahabharat*, *Visnudharmottara* etc. It appears to have been composed in 1569 A.D. (1628 V.S.) at the time of the coronation ceremony of Maharana Pratap at Gogunda. It is not certain whether the Rajpurohita paid any importance to this work and used it on that occasion. Two copies of this work are available in Rajasthan Oriental Research Institute, Udaipur of which one bears the date 1738 V. S. and carry evidence to the event of its presentation to the Rajpurohit on the occasion of Maharana Jaisingh's coronation. Its colophon reads as—

Opening —

श्री रामाय नमः ॥ राज्याभिषेक पद्धति लिख्यते ॥
 राषवेन्द्रं प्रणम्याहं सर्वकामार्थं सिद्धये ।
 ग्रन्थान्ते भूपानामभिषेक विधिं ब्रूवे ॥

Closing—

इति श्री नानापुराण वेद स्मृतिग्रन्थेभ्यः सारयुद्धस्व मिश्र श्री चक्र पाणिना विरचित
 राज्याभिषेक पद्धति सम्पूर्णं : संवत् 1738 आसौज्य वदि—दीतवारे नरहरदास वैष्णवेन
 लिख्यते । लेखक पाठकयोः शुभमस्तु ॥ ए पद्धति पुरोहित श्री गरीबदासाय समर्पितः
 पुरोहित माधवेन लिखापिता रामपुरा ग्राम मध्ये ।

His another work is *Muhurtamata*. It is an astrological treatise and is available in Maharaja Sawai Man Singh II Museum, Jaipur in Khasamuhar collection. It was also composed under the orders of Maharana Pratap. The present copy was scribed in the 18th century. Only Sanjna Nirupana, the first chapter of this work is available in this collection.

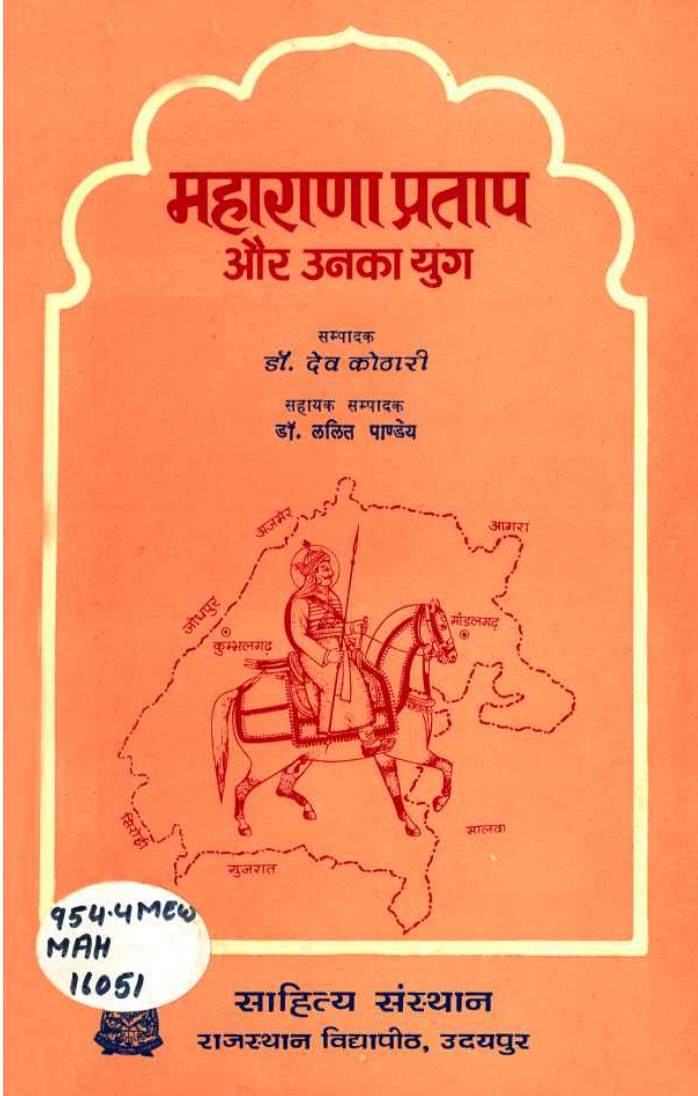
Chakrapani was a Mathur brahmin and belonged to *Nasavare* Chobe family, enjoying the ancestral title of 'Misra'. His grand father Ashanand served the court of Maharana Kumbha as 'Purana-vacaka' and was perhaps bestowed with a free hold jagir. His son Sukhdeva also served Maharana Kumbha on the same post. He had a son named Gajadhar, who is said to have been a great scholar and is compared with Vidyadhar, is endowed with all the vidyas or fourteen branches of learning. He was honoured by Maharana Rayamal. His son Ugra Misra was also a well known scholar and was the father of Chakrapani. Chakrapani was well-versed in the Vedas, all the six systems of philosophy and also in other religious treatises and various branches of science.

His son Kalyan also possessed complete knowledge of the Vedas, law-books, (dharma-shastras), Puranas etc. Giridhar Misra, son of Kalyan, migrated to Varanasi and settled there, with the aim of teaching the scholars of the Hindu religious treatises and has been compared with the seers like Sringeri, Sukhdeva, Vedavyas etc. Muhakam Singh, the grand son of Rana Sagar, brother of Maharana Pratap sent for him and appointed him as his minister and adviser. Giridhar translated Bhagvad Geeta Bhasya, of Sridhar Swami in Braj Bhasya. the above mentioned description of the ancestors and descendents of Chakrapani Misra is given in the above mentioned work.*



* Manuscript No. 1805 *Khasmohal Pothikahna*, Jaipur.

MAHARANA PRATAP AUR UNKA YUG
————— *1991* —————



This document is extracted from the book titled
'Maharana Pratap Aur Unaka Yug'

Editor: Dr. Dev Kothari

Assistant Editor: Dr. Lalit Pandey

Published by Sahitya Sansthan, Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur

Printed at Kailash Printers, Buuwana, Udaipur

महाराणा प्रताप और उनका युग



सम्पादक

डॉ. देव कोठारी

सहायक सम्पादक

डॉ. ललित पाण्डेय



कापीराइट

साहित्य संस्थान

राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर



प्रकाशक

साहित्य संस्थान

राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर



प्रथम संस्करण 1991



मूल्य : 150/-



मुद्रक

कैलाश प्रिन्टर्स,

भुवना, उदयपुर

MAHARANA PRATAP AUR UNAKA YUG

Editor Dr. Dev Kothari, Asstt. Editor Dr. Lalit Pandey, Publisher
Sahitya Sansthan, Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur, Printers
Kailash Printers, Bhuwana, Udaipur, 1991, Rs. 150/-

102 । प्रताप और उनका युग

भामाशाह द्वारा सन् 1593 के लगभग पुनर्निर्मित जावर माता का मन्दिर तथा सादड़ी गोडवाड़ में ताराचन्द द्वारा बनवाई गई बारादरी और बावड़ी भी प्रताप कालीन कार्यों में उल्लेखनीय हैं ।

राणा उदयसिंह के जीवनकाल में ही प्रताप पण्डितों को प्रोत्साहन देता था । प्रताप की प्रेरणा से मधुरा के मिश्र चक्रपाणि ने “विश्वबल्लभ” नामक स्थापत्य कला के ग्रन्थ की रचना की थी । डॉ. रघुवीरसिंह का मत है कि उदयपुर नगर के निर्माण में यह ग्रन्थ अवश्य ही उपयोगी रहा होगा । कुछ वर्ष बाद आवश्यकता पड़ने पर मिश्र चक्रपाणि ने “राज्याभिषेक पद्धति” नामक ग्रन्थ संकलित किया था । 1652 ई. में महाराणा राजसिंह के राज्याभिषेक के समय इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि करवाई गई थी । जन साधारण के उपयोग के लिये तब मिश्र चक्रपाणी ने ‘मुहूर्तमाला’ नामक ज्योतिष ग्रन्थ भी रचा था ।

प्रताप के दरबार में कई विख्यात चारण कवि भी थे । घरमा का पुत्र रामा सांडू सुकवि ही नहीं बीर योद्धा भी था और प्रताप की और से लड़ता हुआ युद्ध में काम आया था । विख्यात कविवर माला सांडू और दूरसा क्राहा ने प्रताप की प्रशंसा में उच्च कोटि की काव्य रचना की । प्रताप ने माला सांडू और दूरसा क्राहा के अतिरिक्त कई अन्य कवियों को भी सम्मानित किया था ।

गोडवाड़ के हाकिम ताराचन्द की प्रेरणा से सादड़ी नगर में जैन विद्वान् साधु हेमरत्न सूरि ने सन् 1588 में खाल्हा-ऊदल के ढंग पर ‘गोरा बादल’ तथा पद्मनी चउपई’ की रचना की थी ।

यों प्रताप ने शांति काल में कुशल शासन के दूसरे स्वरूप को बहुत ही अच्छी तरह प्रदर्शित किया तथा चावण्ड को सांस्कृतिक केन्द्र का स्वरूप प्रदान किया ।¹

प्रताप युगीन आर्थिक दशा ।

कर्नल जेम्स टॉड ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ ‘एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज् ऑफ राजस्थान’ में प्रताप के विषम संकट के दिनों का हृदयरपर्वी वर्णन किया है । किन्तु वह वर्णन अतिरंजित प्रतीत होता है । तथापि इस विवरण को बिल्कुल काल्पनिक और मिथ्या भी नहीं कहा जा सकता । अपनी सब चढ़ाइयों में शहबाज खाँ और जगन्नाथ कछवाहा ने बड़ी ही तेजी, चुरती तथा दृढ़ता के साथ पीछा किया था । ऐसे समय में अवश्य ही प्रताप

1. डॉ. रघुवीरसिंह, महाराणा प्रताप, पृ. 61

*MAHARANA PRATAP MAHAN
JEEWAN VRITTA AUR KRITITVA*
—————1998—————



This document is extracted from the book titled
'Maharana Pratap Mahan: Jeewan Vritta Aur Krittiva'
Authored by Dr. Devilal Paliwal
Published by Rajasthani Granthagar, Sojti Gate, Jodhpur
Printing at S.N. Printers, Delhi



प्रकाशक :

राजस्थानी ग्रन्थागार

प्रकाशक व पुस्तक विक्रेता
सोजती गेट के बाहर, जोधपुर



कार्यालय : 623933

निवास : 32567

© डॉ. देवीलाल पालीवाल



द्वितीय संशोधित संस्करण - जुलाई 1998

मूल्य : एक सौ पिचहतर रुपये मात्र

कम्प्यूटरीकरण :

सुदर्शन कम्प्यूटर सिस्टम

गैलेक्सी मार्केट, जोधपुर

फोन—616433

मुद्रक :

एस. एन. प्रिंटर्स

दिल्ली

MAHARANA PRATAP, MAHAN

Jeewan Vritta Aur Krittiva

— By Dr. D.L. Paliwal

Published by—Rajasthani Granthagar, Sojati Gate, Jodhpur

Second Revised Edition—1998

Price Rs. 175.00

106 / महाराणा प्रताप का शासन— प्रबन्ध

के नवीन स्रोत नहीं प्राप्त किये जाते तो प्रताप के लिए सुरक्षात्मक युद्ध जारी रखना कठिन हो जाता और संभवतः मेवाड़ के कई एक जागीरदार और राजपूत सैनिक सरदार भी मुगल सेवा के लिये दिल्ली की राह पकड़ते। किन्तु राणा प्रताप और मेवाड़ का सामंतवर्ग एक ओर अपने उद्देश्यों पर एकताबद्ध और दृढ़ रहा और उनके लिये अभावों से झुझने के लिये तत्पर रहा, दूसरी ओर राज्य के लिये आय की निश्चित योजना बनाई गई। राज्य की संपूर्ण आर्थिक गतिविधियों का मुख्य आधार और केन्द्र बिन्दु सैन्य व्यवस्था का सुचारू संचालन रखा गया।

(ii) कृषि-उत्पादन और व्यापार सम्बंधी नवीन प्रबंध

(1) मैदानी भाग से आये सामंती सैनिक वर्ग और कृषक वर्ग सारे पर्वतीय भू-भाग में फैल गये। उन्होंने आदिवासी भील समुदाय से मिलकर कृषि के लिये पर्वतों की घाटियों और समतल भू-भागों में नवीन भूमि तैयार की और नये-नये खेत खड़े किये, जिनसे खाद्यान्न की कमी नहीं रही।

(2) जन-जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, सेना के लिये शस्त्रास्त्रों के निर्माण आदि की पूरी व्यवस्था की गई। अनवरत युद्ध-स्थिति के बावजूद राज्य की ओर से मालवा, गुजरात आदि प्रदेशों की ओर व्यापारिक मार्ग सुरक्षित करने की व्यवस्था की गई।

(3) छापामार-युद्ध-प्रणाली के अनुसार मुगल सैनिक टुकड़ियों, काफिलों एवं मुगल थानों पर अचानक आक्रमण करके शस्त्रास्त्र, धन, रसद आदि लूट कर लाने की दृष्टि से योजनाबद्ध कार्यवाहियां की गईं।

(4) राज्य के सेनापतियों द्वारा अवसर देखकर मालवा, गुजरात और मालपुरा आदि क्षेत्रों से धावा मारकर प्रयाप्त मात्रा में धन प्राप्त किया गया। प्रसिद्ध है कि प्रताप के प्रधान (दीवान) भामाशाह ने चूलिया स्थान पर वि.सं. 1635 (1578 ई.) में पच्चीस लाख रुपये तथा बीस हजार अर्शफियां भेंट की। भामाशाह ने यह धन मालवे पर धावा मार कर प्राप्त किया था।

(iii.) नवीन आर्थिक प्रबंध के परिणाम

1576 से 1585 ई. के दौरान मेवाड़ में हुई युद्ध सम्बंधी घटनाएं और 1586 ई. में प्रताप का सफल सैनिक अभियान सिद्ध करते हैं कि प्रताप की आर्थिक योजना पूरी तरह सफल रही और ऐसा नहीं प्रतीत होता कि उसको कभी किसी भीषण आर्थिक संकट के दबाव में आना पड़ा। वस्तुतः संपूर्ण युद्धकाल के दौरान कृषि एवं वाणिज्य की कुशल व्यवस्था के कारण हजारों सैनिकों तथा नागरिकों को दैनिक आवश्यकता की वस्तुएं निरंतर प्राप्त होती रहीं। पहाड़ी स्थानों में जगह-जगह कृषि की व्यवस्था से भू-भाग को आबाद करने में सहायता मिली। शांति होने पर उपज तथा आय के साधन बढ़ते गये। कृषि, व्यापार तथा वाणिज्य उन्नति करने लगे। मालवा और गुजरात की ओर आवागमन सरल हो गया और इन प्रदेशों में मेवाड़ का आयात-निर्यात व्यापार तेजी से होने लगा। कतिपय ऐसी कथाएं प्रचलित रही हैं, जैसे कि राजपरिवार को भी खाने के लिये पर्याप्त अन्न उपलब्ध

नहीं होता था, धन के अभाव से निराश होकर प्रताप द्वारा मेवाड़ छोड़कर जाने का निर्णय करना पड़ा था अथवा प्रताप द्वारा अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए अकबर को पत्र लिखा गया था, इन कथाओं में ऐतिहासिक सत्य नहीं है। वे केवल प्रताप के कठिन पर्वतीय जीवन और वीरतापूर्ण संघर्ष को दर्शाने हेतु दंतकथाओं के रूप में प्रचलित हुईं।

6. जन-संगठन और नेतृत्व

(I) आदिवासी समुदाय का संगठन और सहयोग

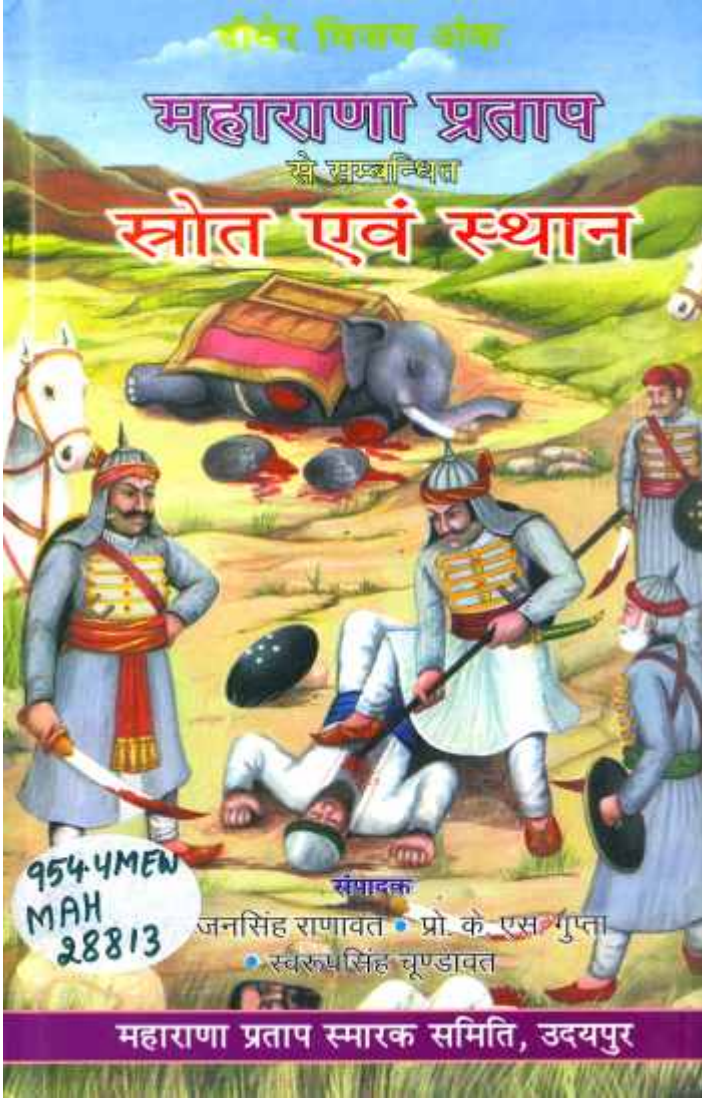
प्रताप के सफल संघर्ष का एक प्रबल पहलू उसकी जन-संगठन और नेतृत्व की अप्रतिम प्रतिभा रही। अपने पिता द्वारा उसके प्रति अपनाये गये उपेक्षा और भेदभाव से पूर्ण व्यवहार के कारण प्रताप को अपने प्रारम्भिक युवावस्था काल से ही अधिकांशतः चित्तौड़गढ़ के बाहर मेवाड़ के भीतरी पहाड़ी भागों में रहना और कार्य करना पड़ा। इसका ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण परिणाम रहा। प्रताप सीधे सामान्य लोगों, प्रधानतः आदिवासी भील समुदाय के निकट सम्पर्क में रहा। अपने सद्चरित्र और स्नेहपूर्ण व्यवहार के कारण प्रताप आदिवासी समुदाय का विश्वनीय प्रिय पात्र “कीका” बन गया। वह उनके बीच इतना जनप्रिय हो गया कि गद्दीनशीन होने के बाद भी सर्वत्र “राणा कीका” के नाम से प्रसिद्ध रहा। फारसी तवारीखों में भी अधिकतः “राणा कीका” लिखा मिलता है। आगे जाकर भील समुदाय का विश्वास और आत्मीयता की भावना ही उसके संघर्ष की सफलता के प्रमुख आधार बने।

(II) सामंत वर्ग और सैनिक समुदाय का सहयोग

युवावस्था के काल में प्रताप न केवल आदिवासी समुदाय का प्रिय पात्र बना, अपितु वह स्वतंत्रताप्रिय और स्वाभिमानी सामंतवर्ग एवं सैनिक समुदाय का चहेता बन गया था। एक ओर उसकी सरलता, सादगी, उच्चचरित्र और सद्व्यवहार ने उसको सर्वप्रिय बनाया, तो उसके साथ उसके द्वारा युवावस्था के दौरान पर्वतीय भूभाग के युद्धों में प्रदर्शित युद्धकौशल, वीरता, दृढ़ साहस और सैन्य-नेतृत्व की प्रतिभा तथा सामान्यजनों को आकर्षित कर उनका सहयोग प्राप्त करने की उसकी क्षमता ने सैनिक वर्ग को न केवल प्रभावित किया अपितु उनमें नवीन उत्साह, आशा और आत्मविश्वास का संचार किया। 1572 ई. में गोगुंदा में मेवाड़ राज्य के उत्तराधिकार की समस्या का जिस प्रकार से किसी कलह के बिना, शांतिपूर्ण ढंग से समाधान हो गया तथा जिस भांति प्रताप को बड़े एकताबद्ध और उल्लासपूर्ण वातावरण में गद्दीनशीन किया गया और उस समय पूरी दृढ़ता एवं जोश के साथ मेवाड़ की स्वतंत्रता कायम रखने की प्रतिज्ञा की गई, उसका प्रधान कारण बत्तीस वर्षीय प्रताप की सैनिक नेतृत्व की क्षमता, जन-संगठन की अपूर्व प्रतिभा तथा दृढ़ चरित्र, साहस और वीरता के गुण थे।

दीर्घकालीन मुगल विरोधी संघर्ष में प्रताप की सफलता में उसकी प्रशासनिक क्षमता और उपयुक्त आर्थिक योजना का जितना योगदान रहा उनसे भी बढ़कर संघर्ष में पर्वतवासियों, प्रधानतः आदिवासियों की सक्रिय भागीदारी रही। वस्तुतः प्रताप ने अपने नेतृत्व के गुणों से सामान्यजनों

*MAHARANA PRATAP
SE SAMBANDHIT SROT AVM STHAN
—————2002—————*



This document is extracted from the book titled
'Maharana Pratap Se Sambandhit Srot Avm Sthan'
Published by Maharana Pratap Smarak Samiti, Moti Magri, Udaipur
Printing at Chirag Printer, Udaipur

इस पुस्तक में उल्लेखित विचार लेखकों के निजी हैं। महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।



परामर्श-मण्डल

1. श्री स्वरूपसिंह चुण्डावत
2. श्री नाहरसिंह जसोल
3. श्रीमती रूपा हिरण
4. श्री मोहनसिंह कोठारी
5. डॉ. के.एस. गुप्ता
6. श्री सज्जनसिंह राणावत

◆ एकमात्र वितरक :

चिराग प्रकाशन

3-ध-19, अभिमन्यू मार्ग
प्रभातनगर, से. 5, हिरणमगरी
उदयपुर-313002 (राज.) भारत
फोन- 0091-294-463474/463164

◆ महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर

फोन- 526010, 526195

◆ प्रथम संस्करण- 2002

◆ मूल्य : **Rs. 295/-** (दो सौ पच्चीस रुपये मात्र)

◆ लेजर टाईप सेटिंग-

अतिश टाईपिंग सेंटर

हिरणमगरी, उदयपुर

फोन- 462931

◆ मुद्रक :

चिराग प्रकाशन, उदयपुर (राज.)

फैक्स : 0091-294-526010

Maharana Pratap Se Sambandhit Srot Avm Sthan

Published by : Maharana Pratap Smarak Samiti, Udaipur

राणा प्रताप के दरबारी चक्रपाणि मिश्र का रचना सौरभ

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

महाराणा प्रताप का नाम भारत के स्वाधीनताप्रिय शासकों में लिया जाता है। उनके जीवन के विविध पक्षों पर जितने विस्तार और अतिरंजित रूप से चर्चा की जाती रही है, उतनी चर्चा उनके शासनकाल में रचित साहित्य को लेकर कभी नहीं हुई।

प्रताप के जीवन का उत्तरार्द्ध शांति का काल रहा। इस काल में चावंड ज्ञान और कला साधना का केन्द्र बना, वहीं प्रताप के गोगुंदा में रहते हुए भी इस दिशा में कार्य अनवरत रहा। प्रताप के दरबारी पंडित चक्रपाणि मिश्र ने कलम को विराम नहीं दिया। उसने प्रताप के राज्याखंड होने से लेकर चावंड में राजधानी स्थापना करने तक लगभग 20 वर्षों तक, अपनी कुल परम्परानुसार राज्याश्रित रहकर तत्कालीन आवश्यकताओं की सम्पूर्ति के लिए विविध साहित्यिक ग्रंथों की रचना की।

चक्रपाणि के विषय

पं. चक्रपाणि ने प्रताप के निर्देशों पर ही लेखन किया। इस तरह प्रताप की रुचि का भी पता चलता है और किसी एक विषय पर संपूर्ण सामग्री का शोधपूर्वक संचय कराने की उनकी उत्कट अभिलाषा का बोध भी होता है।

चक्रपाणि लिखता है कि जिन विषयों पर सामग्री यत्र-तत्र न्यूनाधिक रूप में उपलब्ध है, उस सामग्री एक साथ संचय कराने की राजाज्ञा है और इसलिए वह विषय का चयन कर रहा है। 'विश्ववल्लभ' में वह कहता है:

राणा प्रताप के दरबारी चक्रपाणि मिश्र का रचना सौरभ

एतन्निश्चितमस्ति यद्यपि तथाप्याख्यापि भूपाग्रहात्
प्राक्शास्त्रोदित मार्गं मात्र विशदं...।¹

पं. चक्रपाणि ने जिन विषयों पर ग्रंथों का प्रणयन किया, संभवतः उनके लिए राजाज्ञापं थी, ये राजाज्ञापं निम्न थी-

1. मेवाड़ में भूपाभिषेक की पद्धति निश्चित करते हुए शास्त्र सम्मत रूप से उत्तराधिकारी को सिंहासनारूढ़ किया जाए और इस उपलक्ष्य में उत्सव मनाया जाए ।

2. मेवाड़ चूंकि साधारण और पर्वतीय प्रदेश है, यहां वर्षा तथा जल की समस्या नई नहीं है । जल प्रबंधन भी बेहतर नहीं है; ऐसे में इस प्रदेश में भूमिगत जलशिराओं की जानकारी देने वाली विद्या का शोधन हो । जल प्रबंधन के लिए कूप, कुएं, वापि, जलाशय, द्रोणी का निर्माण हो तथा प्रमुख नगरों, पुरों (राजधानी सहित) में वाटिकाओं तथा उद्यानों का विकास करते हुए वृक्षों का संरक्षण किया जाए ।

3. प्रत्येक कार्य में सफलता और निश्चित परिणाम प्राप्ति के लिए ज्योतिष विद्या का सहारा लिया जाए । इस विद्या के उपांगों-मुहूर्त, शकुन तथा स्वरोदय पर भी ध्यान दिया जाए ।

इन्हीं विषयों पर पं. चक्रपाणि ने अपनी कलम चलाई । लेखन से पूर्व उसने इनके लिए तत्कालीन उपलब्ध ग्रंथों का संग्रहण-शोधन और विश्लेषण भी किया तथा संक्षिप्त रूप से संस्कृत में ग्रंथों का प्रणयन किया । उक्त विषयों का प्रतिपादन करते हुए उसने निम्न ग्रंथ लिखे-

1. राज्याभिषेक पद्धति,
2. विश्ववल्लभ और
3. मुहूर्तमाला ।

बहुत संभव है पं. चक्रपाणि ने और भी ग्रंथ लिखे होंगे, किंतु आज वे उपलब्ध नहीं हैं और संयोग से उक्त तीन ग्रंथों की पांडुलिपियां यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं। इनमें भी संयोगवश सर्वाधिक प्रतिलिपियां राज्याभिषेक पद्धति की ओर मुहूर्तमाला की उपलब्ध हैं । ये राज परिवारों से लेकर आज पाण्डुलिपि संग्रहकों व प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानों में उपलब्ध हैं ।

1. विश्ववल्लभ- 1, 4

महाराणा प्रताप से संबंधित स्रोत एवं स्थान

ये तीनों ही ग्रंथ अद्यावधि अप्रकाशित हैं; विगत कुछ वर्षों में इन तीनों का मुझे अध्ययन और संपादन का अवसर सुलभ हुआ है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि मेवाड़ उस समय ज्ञान-विज्ञान के केन्द्र के रूप में अपनी साख बनाए हुआ था और राणा प्रताप भारतीय ग्रंथमानों, मूल्यों को सुरक्षित रखने के साथ-साथ भारतीय विद्या के शोधन-अन्वेषण में रुचि ले रहा था।

अन्य राजा-राणा जहां अपनी आत्म प्रशंसा में शिलालेखादि उत्कीर्ण करवाकर अपने कार्यों का काव्योचित वर्णन कराने में लगे रहे, वही प्रताप ने इन सबसे दूर सच्चे अर्थों में सेवा का आदर्श स्थापित किया। चक्रपाणि ने प्रताप के संबंध में एकाध श्लोक ही लिखा है। वह कहता है कि राज्य और राजा कई हैं, वे सब प्रताप के पद पंकज में वंदना करते हैं, क्योंकि प्रताप उनके मुकुटों में कोटि-हीर की तरह प्रभाविष्युक्त, देहीप्यमान हैं-

राज्येनैक महीपवंदन नमत्कोटि हीर प्रभाविद्योतत् ।

पद पंकजस्य बहुशो राण प्रतापस्य वै ॥¹

यह श्लोक हल्दीघाटी युद्ध से करीब एक वर्ष पूर्व 1576 ई. में लिखा गया। यह प्रताप के प्रति अनेकानेक राजाओं के समर्पित और विश्वासपात्र होने की जानकारी देता है। मुहूर्तमाला में ही एक अन्य श्लोकांश में पं. चक्रपाणि इस बात को दोहराता है कि प्रताप ने कई सुरक्षित जनपदों को बनाया और उनके चरणों में कई राजा लोग शीश झुकाते हैं-

अकृत जनपदानाम् वैष्णवा येन लोकाः

नृपनमितपदालं चित्रकूटाचलैर्द्रः ।²

चक्रपाणि का लेखन व उत्स

पं. चक्रपाणि का लेखन बहुत ही प्रौढ़ है। संस्कृत के व्याकरण तथा छंद-अलंकार पर उसका अच्छा अधिकार था। उपलब्ध सामग्री के संपादन में उसे दक्षता हांसिल थी। उसने एक-एक विषय को गंभीरता

1. मुहूर्तमाला- 2, समापन पुष्पिका

2. उपर्युक्त- 2, पुष्पिका

राणा प्रताप के दरबारी चक्रपाणि मिश्र का रचना सौरभ

पूर्वक देखा और संस्कृत की पद्धति-मूलक प्रवृत्ति की दृष्टि से लेखन किया ।

यह भी संयोग है कि वह स्वयं भी अपनी आत्मश्लाघा से बचे रहा है । अपना परिचय भी उसने अति संक्षिप्त दिया, जिसके अनुसार वह माधुर द्विज वंशावतंस इंगर (या उग्र) मिश्र का पुत्र है और राजाज्ञा से लोकोपकार के लिख रहा है । वह अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान बने रहना चाहता है, विष्णु की सेवा, सज्जनों की संगति, गुरु की सन्निधि और तीर्थों का भ्रमण करता हुआ संसार पर विजय प्राप्त करना चाहता है ।¹

पं. चक्रपाणि ने राज्याभिषेक पद्धति के लिए वेद से लेकर विष्णु धर्मोत्तर पुराण का अध्ययन-शोधन किया और विधि विधान का निरूपण किया । उसे भारतीय विद्या का विशेष ज्ञान था और वह उद्भट द्विजान था । उसने उस काल में वैदिक ग्रंथों ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद, कर्मकाण्डीय ग्रंथों में हेमाद्रि विरचित चतुर्वर्गीचिंतामणि, कात्यायन श्रौत सूत्र, पारस्कर गृहसूत्र, गोपथ ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, तैत्तरीय, ब्राह्मण, तैत्तरीय संहिता, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, सामविध ब्राह्मण; ज्योतिष विषयक ग्रंथों में लल्लाचार्य कृत रत्नकोश, श्रीपतिकृत रत्नमाला, ज्योतिःसार सागर, वीरविजयउक्ति, नरपति जयचर्यास्वरोदय, बराहमिहिर की बृहत्संहिता तथा उस पर भट्टोटपल्लीय टीका, गार्गी संहिता व बृहज्जातक; वास्तुविषयक ग्रंथों में राजवल्लभ मण्डन, समरांगण सूत्रधार, प्रासाद मंजरी; आयुर्वेद विषयक ग्रंथों में चरक संहिता, रूप नारायण, शाङ्गधर पद्धति के 'उपवन विनोद', सुरपाल कृत वृक्षायुर्वेद, काश्यपीय कृषि सूक्ति और कृषि पराशर आदि का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया तथा तदाधार पर अपने ग्रंथों का प्रणयन किया ।

पं. चक्रपाणि के लेखन पर बराहमिहिर का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है । बराहमिहिर (505-587 ई.) ने गुप्तकाल में जिन विषयों को पुनर्संशोधित रूप में लोकहितार्थ लिपिबद्ध किया, उन्हीं विषयों को संक्षेप रूप से, अन्य विषय - अनुशासनो सहित समकालीन आवश्यकता के

1. उपर्युक्त- 2, पुष्पिका

महाराणा प्रताप से संबंधित स्रोत एवं स्थान

दृष्टिकोण से पं. चक्रपाणि ने निरूपित किया ।

एक प्रकार से पं. चक्रपाणि मिश्र महाराणा प्रताप के दरबार के वराहमिहिर हैं । उसके तीनों ही ग्रंथों पर वराहमिहिर की वृहत्संहिता, योगयात्रा, वृहज्जातक और दैवज्ञ वल्लभा का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । वृहत्संहिता के 'दकार्गलाध्याय' और 'वृक्षायुर्वेदाध्याय' से जहां उसकी 'विश्ववल्लभ' में श्लोक या श्लोकांश मिलते हैं, वही 'सावत्सरा सूत्राध्याय' और वृहज्जातक के राशि भेदाध्याय से होरा, द्रेष्काण, नवांशक, लग्नमान, ग्रहभेद, राशि, तिथि, योगादि का प्रभाव मुहूर्तमाला में दृष्टिगोचर होता है । हालांकि मुहूर्तमाला पर ज्योतिःसार सागर, व्यवहारादर्श, रत्नमाला, रत्नकोश और नरपति जयचर्यास्वरोदय का भी पर्याप्त प्रभाव है ।

इसी प्रकार 'राज्याभिषेक पद्धति' पर 'वृहत्संहिता' के 'पुण्यस्नानाभिषेक' अध्याय का प्रभाव है । यह वही विधि है जिसे इंद्र के लिए ब्रह्मा और कालांतर में वृद्ध गर्गाचार्य ने भागुरी के लिए कहा था । हेमाद्रि ने भी इसका विधान 'व्रतखण्ड' में किया है । 'खड्ग लक्षणाध्याय', शय्यासन लक्षणाध्याय, पट्ट लक्षणाध्याय, चामर लक्षणाध्याय और छत्र लक्षणाध्याय से भी चक्रपाणि ने पूरे श्लोक या श्लोकांश उद्धृत किए हैं । ये अध्याय वृहत्संहिता और विष्णुधर्मोत्तर तथा अग्निपुराण में मिलते हैं ।¹

पं. चक्रपाणि की रचनाधर्मिता और समय सापेक्षता के संदर्भ में कहा जा सकता है कि जिन दिनों राजा टोडरमल (निधन 1589 ई.) बादशाह अकबर के दरबार में धर्म संबंधी व्यवहार, ज्योतिष, औषधि और वस्तुविद्यादि विशद ग्रंथ 'टोडरानंद' के प्रणयन में जुटे थे, उसी समय राणा प्रताप के दरबार में भी इन्हीं विषयों पर पं. चक्रपाणि कलम चला रहा था । टोडरमल ने भी अपने पूर्ववर्ती ग्रंथों से पर्याप्त सामग्री ली और पं. चक्रपाणि ने भी । नंद पंडित, कमलाकर भट्ट, नीलकंठ भट्ट, मित्रमिश्र प्रभृति रचनाकार भी इसी काल के आसपास हुए और सबने लगभग इन्हीं व्यावहारिक विषयों पर विशद ग्रंथ रचे। यही नहीं, चक्रपाणि

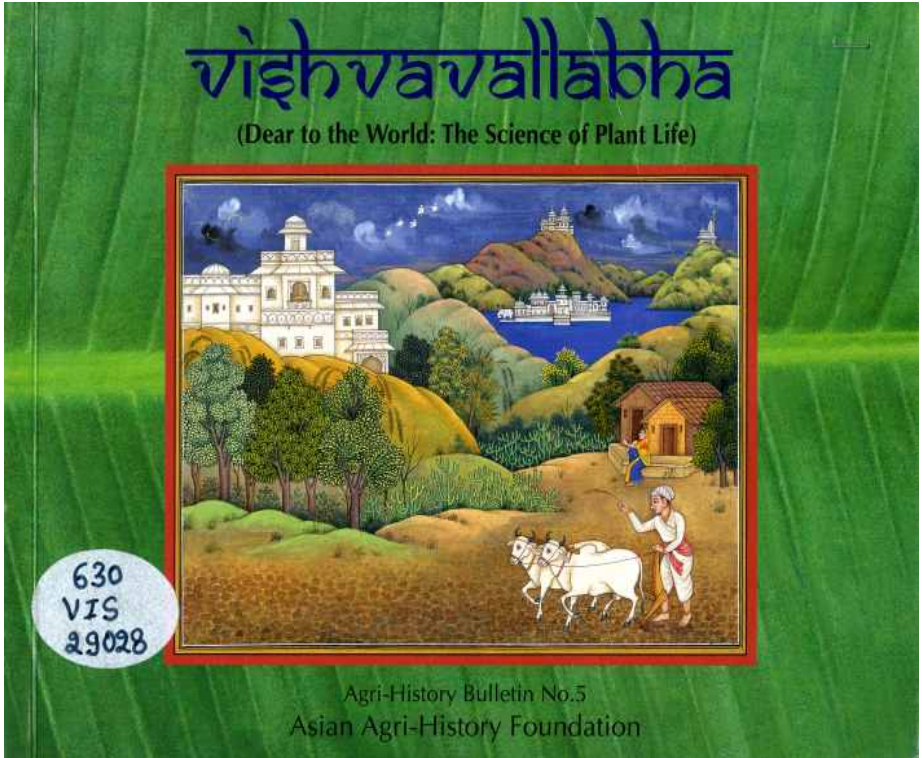
1. राज्याभिषेक पद्धति का आलोचनात्मक अध्ययन (श्रीकृष्ण 'जुगनु') पृष्ठ 23

राणा प्रताप के दरबारी चक्रपाणि मिश्र का रचना सौरभ

के कुछ वर्षों पश्चात ही नीलकंठ भट्ट ने भरेह-चंबल के सेगरवंशी बुंदेल नरेश भगवंत के सम्मान में जिस 'भगवंत भास्कर' नामक विस्तृत ग्रंथ की रचना की, उसके 'नीति ममूख' में 'राज्याभिषेक पद्धति' को उद्धृत किया ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नैतिकता, सामाजिक परिवेश, स्वाधीनता, लोकतंत्र, शौर्य और बलिदान जैसे मूल्यों की स्थापना के लिए जो प्रताप प्रणबद्ध था, वहीं प्रताप धर्म संस्कृति और संस्कारित राजकुल ही नहीं, लोक समुदाय की संरचना और परिपालनीय अर्थबोध का भी हिमायती था । जल और वृक्षों के संरक्षण के साथ-साथ पर्यावरणीय प्रेम भी उनमें कूट-कूटकर भरा था । वह अनम्र और अनाम रहकर अपने अद्वितीय कार्य करने का प्रबल पक्षधर था । इसलिए उसका काल संक्षिप्त उपलब्धियों के बावजूद अंधेरे में हीरक सी प्रभा का बोध कराता है और यह भी एक महत्वपूर्ण मूल्य है, जिसे आज के यश, नाम लिप्सा-लोलुप संसार को ग्रहण करना चाहिए ।

VISHVAVALLABHA
(DEAR TO THE WORLD: THE SCIENCE OF PLANT LIFE)
————— *2004* —————



This document is extracted from the book titled
'Vishvavallabha (Dear to the world: The Science of plant life)'
Translated by Ms. Nalini Sadhale
Published by Asian Agri - History Foundation, Hyderabad

J4028
630
V.L.S

विश्ववल्ली

(Dear to the World: The Science of Plant Life)

Translated
by
Nalini Sadhale

Commentaries
by
Nalini Sadhale and Y L Nene

Agri-History Bulletin No. 5



Asian Agri-History Foundation
47 ICRISAT Colony-1, Brig. Sayeed Road
Secunderabad-500 009, Andhra Pradesh, India

Citation: Sadhale, Nalini (Tr.) 2004. Vishvavallabha (Dear to the World: The Science of Plant Life). Agri-History Bulletin No. 5. Asian Agri-History Foundation, Secunderabad — 500 009, India.

About the Translator

Dr Nalini Sadhale obtained MA in Sanskrit with distinction from the University of Poona, Pune, India and PhD in Sanskrit from Osmania University, Hyderabad, India. She has had a distinguished professional career and she retired in 1994 as Professor and Head of the Department of Sanskrit, Osmania University, Hyderabad. She distinguished herself by serving on several prestigious organizations, committees, and boards. She worked as Sastra Chudamani Scholar of the Rashtriya Sanskrit Samsthan, New Delhi, India. She has several publications which include Katha in Sanskrit Poetics, Sanskrit Verse Translation of Hindi Tulasiramayana, and Translations of Urvashi and Vasantsena from Sanskrit to Marathi, Sitajosyam, from Telugu to Marathi and Surapala's Vrikshayurveda and Krishi-Parashara from Sanskrit to English. She was recently honored by the Asian Agri-History Foundation with the AAHF Gold Medal-2002 for her significant contributions to the Indian agricultural heritage.

Present address: 3-6-468, Hardikar Bagh, Himayatnagar, Hyderabad — 500 029, Andhra Pradesh, India.



630
VLS

© Asian Agri-History Foundation 2004. All rights reserved. No part of this publication should be reproduced in any form or by any means, electronically, mechanically, by photocopying, recording or otherwise, without prior permission of the copyright owners.

ISSN 0971-7722

Foreword

The Asian Agri-History Foundation (AAHF), a non-profit trust, was established and registered in 1994 in Secunderabad, India, to facilitate dissemination of information on agricultural heritage to promote research on sustainable agriculture in South and Southeast Asian regions. These regions provided food security to its population for several millennia, with occasional famines that too in limited pockets, primarily due to drought. Farmers here had evolved some of the most sustainable agricultural management techniques suitable for different agroecoregions. There is a great deal to be learned from the traditional wisdom and the indigenous, time-tested technologies that sustained the farmers of South and Southeast Asia in the past. One of the major objectives of AAHF is to disseminate information on ancient and medieval agriculture by translating old texts/manuscripts into English and publish these translations with commentaries on the scientific content of the texts. The aim of these commentaries of the experts is to stimulate research to verify old practices.

The AAHF has so far published four bulletins: Vrikshayurveda (The Science of Plant Life) by Surapala (c. 1000 AD), Krishi-Parashara (Agriculture by Parashara) (c. 1st century AD), Nushka Dar Fanni-Falahat (The Art of Agriculture) (a Persian manuscript) by Dara Shikoh (c. 1650 AD), and Kashyapiyakrishisukti (A Treatise on Agriculture) by Kashyapa (c. 800 AD). This bulletin has the translation of a Sanskrit manuscript written by a scholar, Chakrapani Mishra, around 1577 AD. He

worked under the patronage of Maharana Pratap, the great ruler of the Mewar region of Rajasthan in Western India, who refused to surrender or be a vassal of the Mughal ruler Akbar, despite having lost substantial territory of Mewar. Even when his kingdom remained a small territory in the Aravalli mountain ranges, Maharana Pratap offered his patronage to scholars such as Chakrapani Mishra.

Who was Maharana Pratap? According to Devilal Paliwal [Maharana Pratap–Mahan (in Hindi) published by Rajasthani Granthagar, Jodhpur, Rajasthan], Maharana Pratap was born on 9 May 1540 as the eldest son of Maharana Udai Singh (1538–1572), who was the ruler of Mewar in Rajasthan. Maharana Pratap succeeded his father and ascended the throne of Mewar on 28 February 1572. A substantial territory of Mewar had already been conquered by Akbar in 1568, and constant pressure on him to surrender continued. Through the rest of his life, Maharana Pratap successfully protected his territory against repeated invasions by Akbar's armies. Finally in 1586 Akbar decided to leave Maharana Pratap alone. During his reign, Maharana Pratap developed Chavand as his capital and his kingdom flourished from 1586 until his death (19th January 1597). Maharana Pratap protected his own honor as well as that of his people all through his life.

And who was Chakrapani Mishra? As pointed out earlier, Chakrapani worked under the patronage of Maharana

Pratap. He wrote three treatises: They are, Rajyabhishek Paddhati, dealing with administration, Muhurtamala covering astronomy, portents, etc., and Vishvavallabha describing the art of agriculture in arid, semi-arid, and hilly regions. According to Mr B M Jawalia (Maharana Pratap and his Times, published by Maharana Pratap Smarak Samiti, Motisingri, Udaipur, Rajasthan, India), Chakrapani was a Brahmin of the Mathur subcaste and belonged to Nasavare Chobe family, enjoying the ancestral title of 'Mishra'. Chakrapani was well versed in the Vedas, the 6 systems of philosophy, and also other religious treatises and several branches of science.

Recently (in 2003) a scholarly book containing Hindi translation of Chakrapani Mishra's three texts mentioned above has been authored by Dr. Shri Krishan "Jagru" (published by Maharana Pratap Smarak Samiti, Udaipur, Rajasthan). The book indeed is a fine contribution to Sanskrit literature. However, its utility to agricultural scientists seems to be limited.

In this bulletin the manuscript (5861-22) reproduced and used was procured from the Rajasthan Prachya Vidya Pratishthan, Jodhpur, Rajasthan through the tenacious efforts of Dr S L Choudhary, Advisor to AAHF and Founder Secretary of The Rajasthan Chapter of AAHF.

The text has been translated and commented upon by Professor (Dr) Nalini Sadhale, Hyderabad, once again without charging any fee. The AAHF is highly grateful to both Dr Choudhary and Professor Sadhale.

Two commentaries have been written; one by Professor Sadhale and the other by Dr Y L Nene. Both the commentaries hopefully would stimulate scholars and researchers to provide additional notes on the literary and scientific value of Vishvavallabha. I believe there is a great opportunity for Indian agricultural scientists to relate heritage to the present-day agriculture.

The handwritten text obtained from Jodhpur as well as a typed version of the same have been printed for ease of reading. An index of plant names has been prepared by Dr Y L Nene.

We hope this publication will prove useful to all those interested in agriculture, not only in India but elsewhere in the world.

Y L Nene
Chairman
Asian Agri-History Foundation

Commentary

Nalini Sadhale¹

Vishvavallabha is a treatise written by Chakrapani on the science of plant life, which closely resembles Surapala's Vrikshayurveda, and deals with the same subject. This contains information on the following aspects of plant life: Tracing of groundwater, construction of water tanks, lakes, etc., classification of land, instructions on propagation and plantation of various trees, watering and special nourishments for good results, plant protection and care, diseases of trees and their treatment, and botanical wonders.

'Vishvavallabha' means 'dear to the world'. The title 'Vishvavallabha' does not reflect the above contents of the book as the title 'Vrikshayurveda' does. The author might have named the book as 'Vishvavallabha' because the subject of plant life is dear to all. Although it appears self-eulogizing, he only follows the tradition in which titles like 'Jagadacharyapustaka' (= A teacher of the world), 'Sarasvatikanthabharana' (= The ornament for the neck of the goddess of learning) are not uncommon.

Many of the topics of Vishvavallabha listed above form part of Surapala's Vrikshayurveda too. In fact, Vrikshayurveda is a name of a science that deals with

plant life and not of a particular text. In works of ancient scholars on this subject, like Varahamihira (6th century) (Bhat, 1981) and Sarangadhara (13th century) (Majumdar, 1935) the word vrikshayurveda is used in plural, signifying thereby that any book on the subject of plant life and tree-plantation would be called vrikshayurveda. While Kautilya in the 4th century BC already knew the existence of this subject as a well-developed science and references to it kept recurring in later literature, an independent treatise on the subject came to light only with the publication of Surapala's Vrikshayurveda in 1996 by the Asian Agri-History Foundation (AAHF), Secunderabad, India. It is a matter of a happy coincidence that within seven years, yet another work of the same merit and authenticity on the same subject, by an equally erudite scholar in the field, is now coming to light. This effort of bringing forth traditional wisdom was initiated by Dr Y L Nene, Chairman, AAHF, followed by a tenacious search by Dr S L Choudhary, Honorary Advisor, AAHF, Udaipur, in procuring a photocopy of the manuscript of Vishvavallabha from Rajasthan Prachya Vidya Pratishthan, Jodhpur in 2002.

1. Kanakalakshmi Apartments, B-1, 3-6-468, Himayatnagar, Hyderabad — 500 029, Andhra Pradesh, India.
(email: nalinisadhale@vsnl.net)

Customarily, authors of ancient Sanskrit texts provide information about their family history, date, preceptor, patron, etc., in the colophons of their texts. In some cases scribes include such information at the end of their copies. Unfortunately, in the present instance both the author and the scribe are silent on this. As a result, we do not have any direct information about the author Chakrapani even on these bare minimum facts, from his own text. We have to depend, therefore, on external evidence, which in this case is fortunately available and can be amply corroborated by the contents of the text.

History

In the Hindi book 'Maharana Pratap–Mahan', based on the life and history of Pratapsimha (1540–1597) the famous ruler of Mewar, who belonged to the Guhilot dynasty, Paliwal (1998) states that Maharana Pratap, besides being one of the greatest warrior-rulers of his time, also initiated and encouraged academic activities in several fields. He quotes in this connection, the name of Chakrapani crediting him with the authorship of three books:

1. Rajyabhishekapaddhati, dealing with coronation
2. Muhurtamala, a work on astronomy
3. Vishvavallabha, dealing with the science of plant life

Jawalia in his article too, mentions the same three as works of Chakrapani. (It appears from his account quoted

from Muhurtamala that Chakrapani's was the fifth generation of this learned family enjoying continuous patronage of Guhilot dynasty). Being a great Sanskrit scholar and a physician, Chakrapani must have been, in his own right, a reputed person of Mewar in the latter half of the 16th century. He also had the fortune of enjoying the patronage of one of the most towering figures of medieval Indian history, the Maharana Pratapsimha of Mewar.

Chakrapani composed Rajyabhishekapaddhati, probably around 1572 AD (1569 according to Jawalia—see reference in Foreword) in the year Rana Pratap was coronated. According to his own statement in the present text, he composed Vishvavallabha on being prompted by the 'king' (IA 4). Although he does not mention the name of the king, it can be easily inferred that he must be referring to Maharana Pratap whose patronage he enjoyed. Hence it is possible to guess that the author composed Vishvavallabha later than 1572, when after coronation, the king would have more leisure to pay attention to other academic matters. Bhandarkar (as quoted by Jawalia), in his 'Survey Report of the search of Manuscripts in Rajasthan', has ascribed 1577 AD as the exact date of this composition.

Predecessors

In the opening verse of Vishvavallabha, salutations are offered to the feet of Raghavendra and to those of the author's preceptor. Although the preceptor's name is

not mentioned, more than one distinguished personality named Raghavendra is referred to in medieval history of India. There was one Raghava (Chaitanya), an ardent devotee of Dattatreya, who lived in Girnar (Gujarat) around 1550 AD (Chitrav, 1937). His father was in the service of the Mughal rulers but Raghava despised them for the atrocities they perpetrated towards the Hindus. He was the author of works on yoga, *vedanta*, etc., and was a preceptor of Keshavachaitanya. It is chronologically possible that he is the one to whom Chakrapani has paid his homage. However, there is no evidence to prove this. Sanskrit writers usually offer prayer to their deity in the opening verses of their compositions which throws some light on their religious sect suggesting the creed that their preceptors might have followed, but the present author has not chosen to do so. Yet another Raghavendra is the more famous Raghavendrathirtha of Karnataka, a *Madhya* by faith, who propagated the philosophy of dualism and established a *math* at Mantralaya. He died in 1671. He could not possibly be the one referred to by Chakrapani who flourished in the last quarter of the 16th century. The contents of the present text clearly suggest that the author belonged to the medieval Rajasthan area (in present Saurashtra region of Gujarat) and the possibility of his having such connection with a saint in the south is remote.

At the end of each chapter of Vishvavallabha, the author Chakrapani mentions his own name as the composer of the work, both in metrical and prosaic forms, occasionally adding a word of praise for the work or for his own

composition thereof. It is the ending verse of the first chapter (ID 16) that is noteworthy in the present context. The author says there that he has 'orally' explained the topic of groundwater currents following 'the sage'. He has preferred, however, not to mention the sage's name. One can guess that in all probability he is referring here to Varahamihira, whom he follows very closely. Alternately this must be a reference to the author's guru from whom he learnt the secrets of the science handed down by tradition. One may also reasonably guess that the author belongs to a period when the tradition of passing knowledge of various subjects orally to the disciples was still in vogue and the practice of disciples giving a formal written form to what they orally learned from their gurus was also common.

In Verse ID 1, the author specifically mentions the name of Varaha (Varahamihira, the author of Brihat Samhita). Yet another person that the author mentions by name in the text is Sarangadhara (14th century), the author of Sarangadharapaddhati and some works on Ayurveda like Sarangadharasamhita (Majumdar, 1935).

Chapters III and IV dealing with plantation refer to several varieties of trees and plants. *Ashota* (*Solanum erianthum*), *pista* (*Pistacia vera*), *badama* (*Prunus amygdalus*), *kharika* (*Phoenix dactylifera*), *methi* (*Trigonella foenum-graecum*), *sevati* (*Rosa alba*), and *seva* (*Malus pumila*) (III-32) are words of non-Sanskrit origin and are obviously borrowed from vernacular languages. This suggests a period when vernacular languages were developed enough to influence Sanskrit compositions.

These hints strengthen or at least do not contradict the fact that the author was a contemporary of king Rana Pratap.

Locale

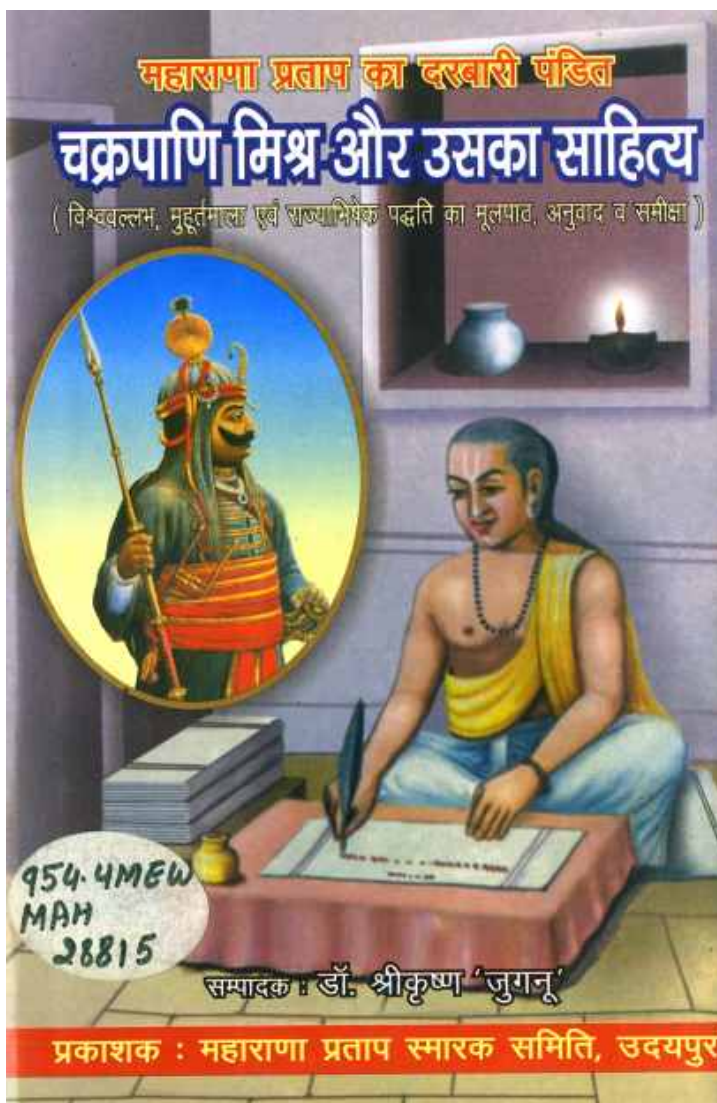
Regarding the area to which this 16th century author belonged, the text provides clear indications. In the opening verse, the author states that he composed the present text to provide the readers with the knowledge of availability of water and also of plantations of trees, as the latter is entirely dependent on the former. In the following verse, too, the author specifies his approach to the topic of water availability. In other works on the same subject, authors deal with this topic towards the end or after discussing seasons and availability of rainwater in the specific region. Chakrapani is silent on these topics and straight away approaches the subject of groundwater at the very outset. This suggests that water was the primary concern of the author and that he belonged to an area where there were scanty rains and plantation necessarily depended on groundwater. The detailed instructions on constructing wells, ponds, lakes, etc., in the second chapter also suggest that the author belonged to a region that faced acute scarcity of rainwater or river water and had to depend solely on manmade water reservoirs as those in Rajasthan. The information on detecting water in the semi-arid and arid regions of Rajasthan could be useful for other areas with similar agroclimatic regions in India.

In Verse IA 4, the author explains why he dealt with the topic of groundwater currents in the way he did. Including deserts and mountainous regions in addition to the usual arid, wet, and ordinary land-divisions for tracing water currents, is the noticeable point where the author deviates from the accepted pattern. This difference in his approach, according to him, is because the king made a specific request to him to trace groundwater in mountainous regions, as also in deserts. Obviously the king who made such a request was one who ruled a land comprising of mountains and deserts and felt some urgency to bring deserts and hillocks under plantation.

History has it on records that Maharana Pratap had fought his battles with the Mughal ruler Akbar, and his officers, taking shelter in the hilly regions of the Aravalli ranges. He had forbidden farming on level lands and had ordered his farmers to cultivate only hilly regions for providing food to his army and preventing Akbar's army from having an access to the same. It also prevented the Mughals from looting and destroying crops. These circumstances could have prompted the king's specific request.

In Chapter II where the author discusses digging of wells and other water reservoirs, there is a reference to breaking hard rocks that interfered with digging. The area to which the author belonged must be one where negotiating such hard rocky terrain was a specific need. The Aravalli ranges of Rajasthan are among the oldest on the earth and the rock formations therein, one of the toughest.

*MAHARANA PRATAP KA DARBARI PANDIT
CHAKRAPANI MISHRA AUR USAKA SAHITYA*
————— 2004 —————



This document is extracted from the book titled
'Maharana Pratap Ka Darbari Pandit Chakrapani Mishra Aur Usaka Sahitya'
Editor: Dr. Shrikrishna 'Jugnu'
Published by Maharana Pratap Smarak Samiti, Moti Magri, Udaipur
Printing at Chirag Printer, Udaipur

महाराणा प्रताप का दरबारी पंडित
चक्रपाणि मिश्र और उसका साहित्य

(विश्ववल्लभ, मुहूर्तमाला एवं राज्याभिषेक पद्धति का मूलपाठ, अनुवाद व समीक्षा)

संपादक

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

प्रकाशक

महाराणा प्रताप स्मारक समिति

मोतीमगरी, उदयपुर



परामर्श मंडल

1. श्री स्वरूपसिंह चुंडावत
2. श्री नाहरसिंह जसोल
3. श्रीमती रूपा हिरण
4. श्री मोहनसिंह कोठारी
5. प्रो. के.एस. गुप्ता
6. श्री सज्जनसिंह राणावत

© महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर

मुख्य वितरक :

चिराग प्रकाशन

3-थ-19, अभिमन्यु मार्ग,
प्रभातनगर, से. 5, हिरणमगरी
उदयपुर 313002 (राज.)

फोन- 0091-294-2463474, 2463164

प्रथम संस्करण- 2004

मूल्य : 375/- (तीन सौ पचहत्तर रुपए मात्र)

लेजर टाईप सेटिंग:

गौरव कम्प्यूटर

15, दक्षिण सुंदरवास, उदयपुर

फोन- 0294-2492871

मुद्रक :

चिराग प्रकाशन, उदयपुर (राज.)

फैक्स : 0091-294-2526010

**MAHARANA PRATAP KA DARBARI PANDIT
CHAKRAPANI MISHRA AUR USAKA SAHITYA**

Edited by : Dr. Shri Krishan "Jugnu"

Rs. 375/-

प्रस्तावना

महाराणा प्रताप स्मारक समिति वर्ष 1962 ईस्वी में वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप की मोती मगरी पर चेतकारूढ़ कांस्य प्रतिमा की स्थापना से लेकर अध्यावधि पर्यंत प्रताप के गौरव गुणगान की दिशा में सक्रिय है। स्थापना के साथ ही इस संस्था का पंजीयन बतौर एक स्वायत्त सोसायटी किया गया, जिसमें भारत के 13 राज्यों सहित अनेक संस्थाओं को सदस्य बनाया गया। एक मेमोरेण्डम में इसके लक्ष्य और कार्यक्षेत्र निहित हैं, जिनके अनुसार समिति प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप के आदर्शों, कृत्यों तथा स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए सभी प्रकार के आवश्यक कार्य संपादित करती आई है। प्रताप के विषय में अधिक से अधिक खोज एवं पुस्तकों से ज्ञान अर्जन कर उसका प्रचार करना अथवा छपवा कर पाठकों एवं शोधकर्ताओं को उपलब्ध कराना समिति का कर्तव्य बनता है।

इसी क्रम में समिति ने वर्ष 1976 से अब तक स्वयं के स्तर पर विभिन्न गोष्ठियों को आयोजन करते हुए विद्वानों के शोध पत्रों के चार संकलन प्रकाशित किए हैं। इसके अलावा एक वृहद् महाकाव्य दलपति विजय कृत 'खुमाण रासो' को तीन भागों में प्रकाशित किया। विद्वानों ने इन सभी प्रकाशनों के प्रयासों की भूरि-भूरि सराहना की है।

महाराणा प्रताप के आश्रय में रहकर पंडित चक्रपाणि मिश्र ने कभी गोगुंदा तो कभी चावंड में तीन ग्रंथों की रचना की। यह थे- *विश्ववल्लभ, मुहूर्तमाला और राज्याभिषेक पद्धति*। ये ग्रंथ अब तक अप्रकाशित थे। समिति की ओर से वर्ष 2000 में आयोजित एक ऐतिहासिक संगोष्ठी में उदयपुर के सुधी विद्वान डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' ने प्रतापकालीन साहित्य पर शोध पत्र का वाचन किया। इस पर प्रभावित होकर मैंने उनसे प्रताप के काल में लिखित उक्त तीनों पुस्तकों को समिति की ओर से प्रकाशित कराने की चर्चा की। उन्होंने उत्साह दिखाया और इन ग्रंथों का न केवल मूल पाठ खोजा, अपितु इन पर समीक्षात्मक टिप्पणियां, संपादन और अनुवाद जैसा दुःसाध्य कार्य भी पूरा किया।

इससे महाराणा प्रताप और उस काल की साहित्यिक तथा पर्यावरण सहित ज्योतिष की प्रवृत्तियों पर नवीन प्रकाश पड़ता है। ये ग्रंथ जब संपादित होकर आए तो समिति ने इन्हें छपवाना अपना कर्तव्य माना और प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान की। डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' ने पूरी मेहनत और लग्न के साथ इन तीनों ग्रंथों का पाठान्तर (के साथ श्रेष्ठ संपादन किया और संस्कृत का सर्वोपयोगी अनुवाद भी सामने लाने का उपक्रम किया है। साथ ही इस काल पर शोध की नवीन संभावनाओं के कई द्वार खुले हैं। यह पहला मौका है जब प्रताप के काल में लिखी गई और प्रताप के आदेश पर लिखी गई रचनाएं सार्वजनिक होने जा रही हैं।

परामर्श मंडल के विचार से इन तीनों ही पुस्तकों को एक ही जिल्द में छपवाने का निर्णय किया गया ताकि विद्वानों, पाठकों और संस्कृत अनुसंधित्सुओं को प्रताप के काल की ये तीनों पुस्तकें एक साथ उपलब्ध हो सकें। वैसे भी ये तीनों पुस्तकें मिलाकर ग्रंथ करीब पौने चार सौ पृष्ठ का होता है, जो पाठकों के लिए सुविधाजनक ही होगा। समिति को इस बात का गर्व है कि वह महाराणा प्रताप के दरबारी पंडित चक्रपाणि मिश्र की तीनों रचनाओं का प्रकाशन करवा रही है। राणा प्रताप ने बहुत आग्रह के साथ इन ग्रंथों का प्रणयन करवाया था। समिति अपने ईष्ट महाराणा प्रताप के प्रति नतमस्तक होकर अपना यह प्रकाशन-पुष्प उनके चरणों में सादर समर्पित कर रही है।

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' ने इसके संपादन, अनुवाद तथा समीक्षात्मक रूपरेखा तैयार कर प्रकाशन के लिए अपूर्व सहयोग किया और संस्कृत व वैदिक जैसी भाषा को शुद्ध रूप में उपलब्ध कराने का प्रयास किया। समिति उनकी आभारी है तथा आशा करती है कि महाराणा प्रताप के काल पर शोध के नए पन्ने खुलेंगे। मैं हमारी समिति की संरक्षक श्रीजी अरविंदसिंहजी मेवाड़, अध्यक्ष श्री शक्तिसिंहजी एवं अन्य सभी सदस्यों का आभारी हूँ कि उन्होंने इस पुण्य कार्य की स्वीकृति दी और परामर्श मंडल ने इस प्रकाशन के लिए अपनी अमूल्य राय दी। चिराग प्रकाशन ने इस कार्य को समय पर पूर्ण करने का दायित्व निभाया, तदर्थ धन्यवाद।

- सज्जनसिंह राणावत

मानद सचिव

महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर

पुरोवाक्

इतिहास को रचते गायक हैं, किंतु उसके नायक वे महापुरुष होते हैं जो लोकधर्म का प्राणपण से निर्वाहकर अंतिम सांस लेते हैं। इतिहास के पृष्ठों पर उनका नाम, गुण और गौरव स्वर्णाक्षरों में अंकित होता है और कोटि-कोटि लोककंटों से भी उनकी कीर्ति-कथाएं गूँजित एवं व्यंजित होती रहती है। महाराणा प्रताप भी ऐसे ही महामानव थे जिनकी कीर्तिकथाएं आदर्श चरित् नायक के रूप में हमारे मस्तक को गर्वोन्नत करती है। महाराणा प्रताप अपने युग के न केवल महान योद्धा और पराक्रमी पुरुष थे, बल्कि विवेकवान देशरक्षक भी थे, सतत् संघर्ष और संतोष के साथ-साथ सद्मार्ग की सदैव सुरक्षा के गुण उनके विराट व्यक्तित्व को मणिकांचन योगवत् बनाते हैं।

महाराणा प्रताप के व्यक्ति के विषय में उनके काल से लेकर आधुनिक काल तक न केवल मेवाड़ और भारत, अपितु विश्व में भी जहां-तहां काफी कुछ लिखा गया है। उनके आश्रित कवियों चारणों ने ही नहीं, अन्यान्य प्रभावित रचनाकारों के साथ-साथ विदेशी इतिहासकार, शोधानुसंधानकर्ताओं ने भी कलम चलाई और महाराणा प्रताप के काल, जीवनवृत्त और शासन सहित कार्यों का विविध दृष्टियों से मूल्यांकन एवं समीक्षण किया।

किंतु, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से महाराणा प्रताप के राज्यकाल का अपेक्षित अध्ययन अद्यावधि शेष है। मेवाड़ में महाराणा कुंभा के शासनकाल के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पक्षों पर तो न्यूनाधिक शोधकार्य देखने को मिलता है, लेकिन अन्य परवर्ती महाराणाओं के राज्यानुशासनों को लेकर इस तरह का प्रयास कदाचित नहीं हुआ।

देखने में यह भी आता है कि प्रताप के बारे में साल-दर-साल एकाध पुस्तक एवं विविध पत्र-पत्रिकाओं में दर्जनों लेख पढ़ने को मिल जाते हैं। इसमें

आधार और स्रोत रूप में वही सामग्री होती है जो अद्यावधि प्रकाशित होकर उपलब्ध है किंतु अप्रकाशित और बिखरी सामग्री की ओर ध्यान ही नहीं दिया गया है। महाराणा प्रताप विषयक सामग्री के लिए पारंपरिक स्रोत और जानकारी के बारंबार प्रयोग की प्रवृत्ति मुझे रुचिकर नहीं लगी और मैं उसी काल की नवीन सामग्री के शोधानुसंधान और अध्ययन में जुट गया। मैंने महाराणा प्रताप के राज्यानुशासन के साहित्यिक अवदान की ओर अपना ध्यान पूरी चेतना के साथ आकर्षित किया।

उनके आश्रित विद्वान पण्डित चक्रपाणि मिश्र की कृतियों का पता लगाकर मातृकाओं के पाठ के संग्रह सहित तथा संपादन और अनुवाद का कार्य प्रारंभ किया। यह कार्य आसान नहीं था। जिस उत्साह वशीभूत होकर मैंने चक्रपाणि मिश्र की कृतियों के संग्रह, मूलपाठ और पाठांतर की खोज का संकल्प किया, उसमें कई बार अवरोध आए, अपने जनों से भी अपेक्षित सहयोग की उम्मीद में अनपेक्षित असहयोग मिला किंतु यही लगा कि हताशा के तिलस्म में ही आशा की फुलवारी है। प्रणवीर प्रताप पर कार्य संपादन का एक प्रण ही रहा।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि पण्डित चक्रपाणि मिश्र के तीनों ग्रंथों विरववल्लभ, मुहूर्तमाला और राज्याभिषेक पद्धति की मातृकाएं मिल गईं और लगभग चार साल तक लगकर इनके संपादन, पाठांतर, अनुवाद और शोधात्मक टिप्पणियों के लेखन का कार्य पूरा हुआ और प्रकाशित रूप में यह ग्रंथ महाराणा प्रताप का दरबारी पण्डित चक्रपाणि मिश्र और उसका साहित्य आपके कर कमलों में है।

सर्व प्रथम *राज्याभिषेक पद्धति* का पाठ तैयार करते समय मुझे बारंबार राजतंत्रात्मक भारत में राजा के पद और वैभव का खयाल आया और राजधर्म का जो यत्किंचित बोध हुआ, उसी के परिणाम स्वरूप इसकी भूमिका का लेखन पूरा हो सका। इस पद्धति के मूल उत्स की तलाश में कई ग्रंथों का सर्वेक्षण करना पड़ा, कई ग्रंथ मेवाड़ के पुस्तकालयों व निजी ग्रंथ संग्रहों में भी नहीं मिले और यहां यह लिखते हुए आत्म गौरव की अनुभूति हो रही है कि इसमें नामोल्लेखित अधिकांश ग्रंथ क्रय भी करने पड़े। ये ग्रंथ चक्रपाणि ही नहीं, सूत्रधार मण्डन के भी ग्रंथों के संपादन, पाठ निर्धारण तथा अध्ययन में भी उपयोगी हुए।

इन्हीं ग्रंथों के आधार पर राज्याभिषेक पद्धति का प्रथमोचित पाठ शोधन और अनुवाद किया गया। यूँ इसके अनुवाद में तदयुगीन नीतिपरक, अनुष्ठानिक कृत्यों का विवेचन किया गया है तथापि अधिकांश वैदिक ऋचाओं, मंत्रों के होने से उनका अर्थ ज्यों का त्यों देने का प्रयास किया गया है, अर्थ में पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य तथा महर्षि दयानंद सहित सायणभाष्य का उपयोग किया गया है।

ज्योतिष ग्रंथ **मुहूर्तमाला** के संदर्भ में यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि जिस समय केवल मुहूर्त विषय को केंद्र में रखकर ग्रंथों का प्रणयन किया जा रहा था, उस काल में इस कृति का भारत में तीसरे क्रम पर लेखन हुआ। इस काल में कई ज्योतिष विषयक ग्रंथों की व्याख्याएं भी लिखी जा रही थीं, किंतु चक्रपाणि ने सामासिक रूप में इस विषय को लिखने का यत्न किया और गागर में सागर भरने का सर्वसंभव प्रयास किया। यह भी स्मरणीय है कि उस काल में फलित ज्योतिषियों ने अनर्थकारी कार्यों से विधमों का प्रचार किया, लोभवश कई लोगों ने अपने ग्रंथों को लोप कर दिया। दैवज्ञ अपनी लग्न साधन विधि से कुतकों द्वारा लग्नादि द्वादश भावों की साधन प्रणाली को प्रचार में जुटे हुए थे। ऐसे दौर में चक्रपाणि ने ज्योतिष के मूल प्रतिपादकों के मतों का अनुसरण करते हुए मुहूर्तमाला का प्रणयन किया। इस ग्रंथ के अनुवाद में यथावश्यक विस्तार देने और विवेचन का भी प्रयास किया गया है, सुझाव पाठ भी देकर खंडित या त्रुटित श्लोकों की पूर्ति का प्रयास किया गया है।

वृक्षायुर्वेद एक ऐसा ही विषय है जिसकी ओर विभिन्न राजाओं ने विशेष ध्यान दिया। राजधानी और नगरों ही नहीं, गांवों तक के लिए वृक्ष और वाटिकाएं उपयोगी मानी गईं। सम्राट अशोक ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल की थी। मनु, मत्स्यादि के साथ ही बलदेव, सारस्वत जैसे आचार्यों और अन्य पुराणकारों सहित सुश्रुत, पराशर, कौटिल्य चाणक्य, काश्यप, वराहमिहिर, सुरपाल के साथ ही शाङ्गधर, संत ध्यानेश्वर, चालुक्य नरेश सोमेश्वर तृतीय आदि ने इस विषय को समय-समय पर विस्तृत करते हुए पुनर्प्रतिपादित करने का यत्न किया।

महाराणा प्रताप की स्वयं की अभिलाषा थी कि इस विषय का विकास हो। उन्होंने आज्ञा देकर, आग्रहपूर्वक चक्रपाणि से जल विज्ञान तथा उद्यान तकनीकी के विषय में पुनर्लेखन करवाया। चक्रपाणि को इस संबंध में पूर्वज्ञान

था। उसने विभिन्न ग्रंथों का अनुशीलन किया और प्रताप की आज्ञा से अपने अनुभूत प्रयोगों को जोड़ते हुए जिस ग्रंथ का प्रणयन किया, वह **विरववल्लभ** है। इसमें जल, जलशिरा विचार, जलागार-जलाशय तथा वाटिका का निर्माण और वहां रोपणीय पौधों की देखभाल, पेड़-पौधों का विचित्रीकरण तथा अन्य एतद् विषयक ज्ञान का अकूत संचय है।

इन तीनों की कृतियों में चक्रपाणि के उत्स और उपस्कारक ग्रंथों सहित अन्य जानकारियों का इस ग्रंथ में यथास्थान उल्लेख किया गया है। जहां पाठांतर था, उसे भी देने का प्रयास किया गया है और मातृकाओं की प्राप्ति के स्रोत के संबंध में भी टिप्पणी कर दी गई है।

मेवाड़ के इतिहास के शोधानुसंधान के लिए नवीन स्रोतों की तलारा के पृष्ठ पोषण के लिए मैं मेवाड़ राजपरिवार से संबद्ध महाराणा मेवाड़ फ़ाउण्डेशन के अध्यक्ष श्रीअरविंदसिंह मेवाड़ का हृदय से आभारी हूँ। मेरे इस कार्य में प्रेरणा स्रोत बने जाने-माने इतिहासकार डॉ. श्रीकृष्णस्वरूपजी गुप्ता के प्रति विनित भाव लिए हूँ। यदि वे बराबर प्रोत्साहन की वृष्टि नहीं करते तो मेरा संकल्प शायद 'श्मशान वैराग्य' ही होकर रह जाता।

मुहूर्तमाला व **विरववल्लभ** का अनुवाद संस्कृत के सुधी विद्वान डॉ. श्रीशक्तिकुमारजी शर्मा 'शकुंत' का मेरे लिए महत्वपूर्ण अवदान है। अति व्यस्तताओं के बीच भी उन्होंने समय निकालकर मेरे इस संकल्प को बल दिया कि राणा प्रताप के काल की समग्र पाण्डुलिपियों का संपादन और प्रकारान शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिए। उन्हें कोटिशः धन्यवाद, मैं उनका ऋणि हूँ।

राज्याभिषेक पद्धति का अनुवाद संस्कृत की व्याख्याता श्रीमती कुसुमलता चौहान व पुत्री आयुष्मति सुश्री अनुभूति चौहान ने संयुक्त रूप से किया है, इसका कार्य आसान नहीं था। दोनों ने इसके लिए विभिन्न ग्रंथों का शोधन किया और मातृकाओं में त्रुटित वैदिक ध्वनियों को खोज निकाला व साधुपाठ देने का प्रयास भी किया है, यह अति दुष्कर अध्ययन था किंतु एक प्रयत्न की तरह इसे किया गया। श्रीमती कुसुमलता तो इस पर शोध भी कर रही है। दोनों को अनेकशः धन्यवाद।

महाराणा प्रताप स्मारक समिति के मानद् सचिव श्रीमान् सज्जनसिंहजी

राणावत का भी मैं अतीव आभारी हूँ जिन्होंने इन ग्रंथों के प्रकारान का दायित्व उठाते हुए मुझे अनवरत अनुसंधित्सु बनाए रखा। साथ ही प्रेरणा व सहयोग के लिए डॉ. श्रीदेवीलाल पालीवाल, डॉ. श्रीदेव कोठारी, डॉ. श्रीमहेन्द्र भानावत और मेरे पृष्ठपोषक और सम्मान्य, समर्पित पत्रकार श्रीरमेश व्यास का मैं नामोल्लेख किए बिना नहीं रह सकता। मैं सबका आशीर्वादाभिलाषी हूँ।

मातृकार्य व पाठ उपलब्ध कराने के लिए राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के वरिष्ठ शोध सहायक श्रीरतनदास कामड़ व वरिष्ठ गवेषक डॉ. श्रीराजेन्द्रनाथ पुरोहित सहित प्रतिष्ठान के प्रधान कार्यालय जोधपुर के संग्रहालयाध्यक्ष के प्रति अनेकशः आभार।

मातृकार्यों से पाठ तैयार करने से लेकर संदर्भ खोजने, उपस्कारक ग्रंथों को जुटाने और संशोधन कार्य में सहधर्मिणी पुष्पा और पुत्री सौ. कां. अनुकृति सहित अनुज चि. अरविंद चौहान का निरंतर सहयोग और सहकार रहा। इन्हें धन्यवाद कहना अति लघु लगता है, मैं इन सबके स्नेहाधीन हूँ। इन तीनों ही ग्रंथों का सुंदर टंकण और पृष्ठों का आयोजन साथी श्रीराजेंद्रसिंह नेगी की देन है। उनके प्रति धन्यवाद।

इस ग्रंथ की अच्छाइयां प्रभु श्रीनाथजी की कृपा का प्रसाद है और त्रुटियां मुझ अल्पज्ञ से हुई है। चूंकि तीनों ही ग्रंथों का संपादन अलग-अलग समय पर हुआ है, अतः चक्रपाणि का परिचय तीनों ही ग्रंथों न्यूनाधिक रूप से दिया गया है किंतु उसमें पुनरावृत्ति कम ही हुई है। विद्वज्जन इस कार्य को सार सहित स्वीकारेंगे और अपनी सम्मति देंगे क्योंकि कहा भी है- *गच्छतः स्वल्पं क्वापि भवेत्येव प्रमादतः । हसंति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥*

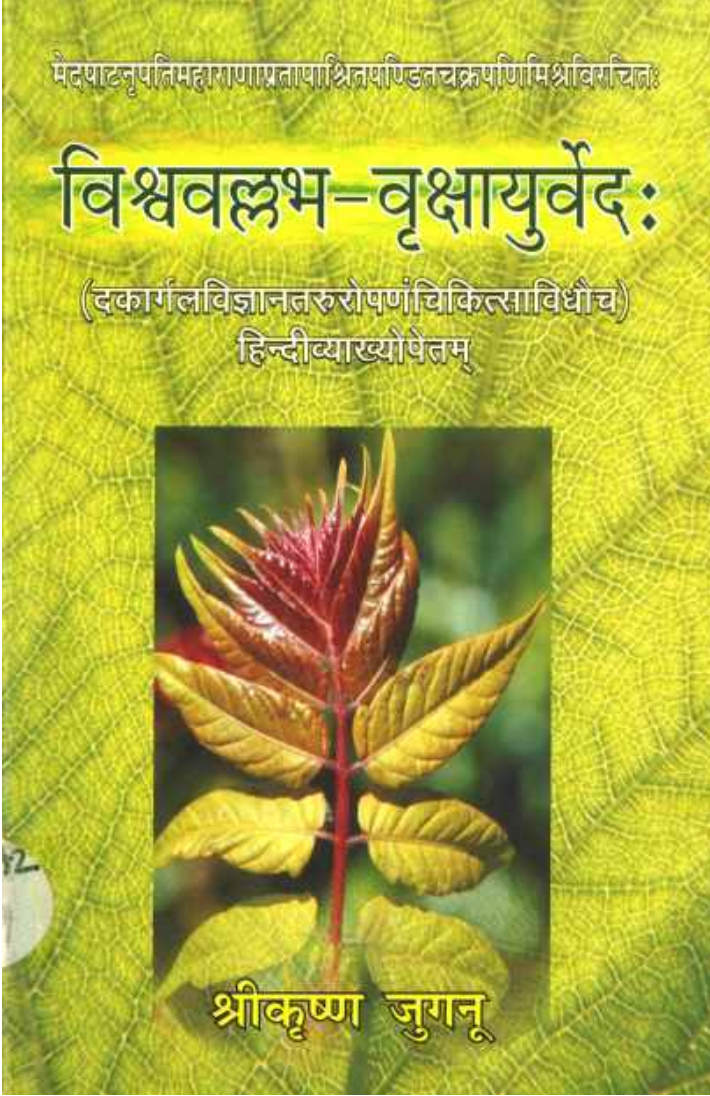
15-दक्षिण सुन्दरवास,

उदयपुर।

अक्षय तृतीया, विक्रम संवत् 2059

श्रीकृष्ण 'जुगनू'

VISHVAVALLABHA VRAKSHAYUVEDA
————— *2005* —————



This document is extracted from the book titled
'Vishvavallabha Vrakshayuveda'
Editor: Dr. Shrikrishna 'Jugnu'
Printing at Jain Amar Printing Press, Delhi

मेदपाटनृपतिमहाराणाप्रतापाश्रितपण्डितचक्रपाणिमिश्रविरचितः

विश्ववल्लभ-वृक्षायुर्वेदः

(दकार्गलविज्ञानतरुरोपणंचिकित्साविधौच)

हिन्दीव्याख्योपेतम्

COMPLETE

ADY
ADY

संपादक एवं व्याख्याकार
डॉ० श्रीकृष्ण 'जुगनू'



न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन

(दिल्ली)

::

(भारत)

प्रकाशक :

न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन
5824, न्यू चन्द्रावल, (निकट शिव मन्दिर)
जवाहर नगर, दिल्ली-110007
फोन : 23851294, 55195809
E-mail : newbbc@indiatimes.com

133.5872
MIS

प्रथम संस्करण : 2005

© श्रीकृष्ण 'जुगनू'



ISBN : 81-8315-014-4

लेजर टाईप सैटिंग :
क्रियेटिव ग्राफिक्स
दिल्ली-53

मुद्रक :
जैन अमर प्रिंटिंग प्रैस
दिल्ली-7

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृत साहित्य अपनी विशिष्टताओं के लिए विश्व विश्रुत है। इस साहित्य के विविध विषय हैं। इसके कई अनुशासन या शाखा विषय हैं जो वेदों से लेकर संहिता आदि ग्रंथों में निहित मिलते हैं। 'वराहीसंहिता' या 'बृहत्संहिता' तथा 'अद्भुतसागर' जैसे ग्रंथों में संहिता शाखाओं के रूप में जितने विषयों का संग्रह मिलता है, वह अपने आप में अद्भुत और अपूर्व ही नहीं, अतुलित और अकूत भी है। व्यक्ति ने अपने सामर्थ्य के अनुसार उसका संग्रह, संचयनकर अध्ययन करने का यत्न किया, अन्यथा यह कह दिया कि ज्ञान का विस्तार अपरिमित है और बुद्धि का कोषागार सीमित है। ऐसे ज्ञान के लिए तो यह तक कहा गया कि वह मानवीय नहीं, दैवीय है और इसी संदर्भ में यह मत प्रतिपादन करने से भी परहेज नहीं हुआ कि प्रथमतः प्रजापति ने इसका 'अमुक' के प्रति उपदेश किया। स्वयं वराहमिहिर जैसा आचार्य इसी बात से अपना ग्रंथारंभ करता है—

प्रथममुनिकथितमवितथमवलोक्य ग्रंथविस्तरस्वार्थम्।

नातिलघुविपुलरचनाभिरुद्यतः स्पष्टमभिधातुम्।।

(बृहत्संहिता 1, 2)

पाश्चात्य विद्वानों ने भी भारतीय मनीषा पर गौरव बखान किया हैं। 'लेंद क्लासिक' के लेखक प्रोफेसर लुई रेनू तथा जॉ फिलिओजॉ हो या 'हिस्टी ऑफ इंडियन लिटरेचर' के लेखक एम. विंटरनिट्ज अथवा 'हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर' के रचयिता प्रोफेसर ए. बी कोथ और ए. ए. मेक्डोनाॅल हो— सभी ने भारतीय संस्कृत साहित्य और इसके विषयों को अपरिमित बताया है। वैदिक साहित्य के बाद जब कि आयुर्वेद, आयुष्य एवं पौष्टिक सूक्तों, प्रार्थश्चित एवं उपचार मंत्रों, आभिचारिक मंत्रों का विकास हुआ, तो भेषजज्ञानी परंपरा का सूत्रपात भी हुआ और विभिन्न व्याधियों के शमन की विचारधारा पनपी। इनका संबंध चर के साथ ही अचर से भी था।

वृक्षायुर्वेद का विकास भी इसी की कड़ी है और जल का ज्ञान भी। पूर्वकाल

(vi)

में आयुष्य के लिए ऐंद्रजालिक क्रियाओं और प्रार्थनाओं पर निर्भरता थी। अधिपालों, कृषकों, शस्य कार्यकर्ताओं द्वारा अपनी-अपनी महत्वाकांक्षाओं की सफलता के लिए प्रार्थनाओं का सहारा लिया जाता था, भूमिदारण के हेतु, बीजारोपण के हेतु और धान्यवृद्धि के हेतु आशीर्वाद के मंत्रों का प्रयोग होता था, क्षेत्रकृमियों के विरुद्ध भूतापसरण तथा अग्नि विभीषिका के विरोध में मंत्रों का प्रयोग होता था। इसी प्रकार तब जल प्राप्ति के लिए भी इन्द्र और पर्जन्य का आवाहन किया जाता था-**अभि क्रंद स्तनयार्दयोधिं... कृशगुरेत्वस्तम्।** (अथर्ववेद 4, 15, 6)

धोरे-धोरे व्यावहारिक और प्रायोगिक ज्ञान के विकास के साथ काश्यपादि ऋषियों ने इस विद्या को पल्लवित करने का प्रयास किया। मनु, मत्स्यादि के साथ ही बलदेव, सारस्वत और पुराणकारों ने अनुभूत ज्ञान के साथ परंपराओं को संपृक्त किया तथा नवीन दृष्टि दी। सुश्रुत, पराशर, कौटिल्य, वराहमिहिर, सुरपाल, सोमेश्वर, शार्ङ्गधर, संत ध्यानेश्वर आदि ने इस विषय को समय-समय पर विस्तृत करते हुए पुनर्प्रतिपादित करने का यत्न किया। यह प्रयास तो मुगलकाल तक रहा जबकि शहंशाह शाहजहां के पुत्र दारा शिकोह ने 'नुस्खा दर फत्वी फलाहत' जैसी कृति का पृथक् से प्रणयन किया।

प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप के काल (1572-1597 ई०) में ज्योतिर्विद रहे पं० चक्रपाणि मिश्र को भी इस विषय का विशेष ज्ञान था। महाराणा प्रताप स्वयं चाहते थे कि इस विद्या का विकास हो। उन्होंने आज्ञा देकर, आग्रहपूर्वक चक्रपाणि से जल विज्ञान तथा उद्यान तकनीकी के विषय में पुनर्लेखन करवाया। चक्रपाणि को इस संबंध में पूर्वज्ञान था, उसने विभिन्न ग्रंथों का अनुशीलन किया था तथा महाराणा की आज्ञा से अपने अनुभूत प्रयोगों को भी जोड़ते हुए जिस ग्रंथ का प्रणयन किया, वह 'विश्ववल्नभ' है। इसमें जल, जलशिरा विचार, जलागार-जलाशय तथा वाटिका निर्माण, वहाँ रोपणीय पौधे, पौधों की देखभाल, पौधों का विचित्रीकरण तथा अन्य एतद् विषयक ज्ञान का अद्भुत संचय है।

रचना के करीब सवा चार सौ सालों तक यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक अप्रकाशित ही रही। महाराणा प्रताप के संबंध में समव-समय पर विभिन्न पुस्तकों, ग्रंथों, स्मारिकाओं का प्रकाशन होता रहा। कई शोध पत्रों का वाचन भी हुआ किंतु उनके शासन काल में चक्रपाणि मिश्र द्वारा रचित साहित्य अंधकार में ही रहा। कुछ वर्षों पूर्व मैंने प्रताप के काल के नवीन स्रोतों के अनुसंधान की दिशा में किञ्चित् प्रयास कर 'महाराणा प्रताप का दरबारी पण्डित चक्रपाणि मिश्र एवं उसका साहित्य' विषय पर कार्य कर

(vii)

ग्रंथ महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर को सौंपा। इससे चक्रपाणि कृत मुहूर्तमाला, राज्याभिषेक पद्धति के साथ ही विश्ववल्लभ पहली बार लोगों के सामने आए।

इसी प्रयास से वृक्ष विज्ञानियों और भारतीय कृषि विज्ञान के अनुसंधाताओं का ध्यान 'विश्ववल्लभ' की ओर गया और इस पर स्वतंत्र कार्य के लिए प्रेरित हुए। मैंने इसके पाठ संपादन और इसके प्रतिपाद्य पर संक्षिप्त आलेखात्मक टिप्पणियाँ, पाद टिप्पणियाँ आदि तैयार करने का यत्किञ्चित् प्रयास किया है। साथ ही वृक्षायुर्वेद और जलाशयादि निर्माण विषयक वास्तु ग्रंथों और दकार्गल से संबंधित अब तक उपलब्ध पुस्तकों, ग्रंथों के मतों, विचारों से विश्ववल्लभ की तुलना करने का प्रयास भी किया गया है। हालाँकि सुरपालकृत "वृक्षायुर्वेद" भी मैंने संपादित किया है।

इसके अध्ययन के बाद यह दृष्टि विकसित होती है कि आज जबकि उद्यान विज्ञान के विकास के साथ ही पौधरोपण कार्यों को पर्याप्त महत्त्व दिया जा रहा है तथा पर्यावरण संरक्षण की दिशा में जोर-शोर से प्रयास किया जा रहा है, तब इस कृति का महत्त्व और बढ़ जाता है। इसमें पौधों के आयुष्य की वृद्धि के साथ ही पौधों की आधिव्याधियों, भूमिचयन, अभिसिञ्चन, विचित्रीकरण आदि की भी विधियाँ अनुभूत रूप से दी गई हैं। आधुनिक उद्यान-विज्ञानिकों के साथ इसकी तुलना की जानी चाहिए। इसके प्रयोगात्मक निर्देशों का पालना उस काल में तो की जाती थी, किंतु बाद में भी होती रही। इसमें प्राचीन ऋषिज्ञान का भंडार है। मेवाड़ आदि प्रदेशों के संबंध में इसमें कहे गए विचारों की प्रासंगिकता सदा बनी रहेगी।

प्रस्तुत पाठ के साथ ही वृक्षायुर्वेद विषयक प्राचीन स्रोत सामग्री के रूप में बृहत्संहिताक उदकार्गल एवं वृक्षायुर्वेदाध्याय को परिशिष्ट रूप में दिया गया है विषय को सुस्पष्ट करने के लिए यथा स्थान चित्र, रेखाचित्र भी दिए गए हैं।

इस ग्रंथ का प्रस्तुत पाठ प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में मौजूद प्रतिलिपि तथा मेरे संग्रह में विद्यमान प्रतिलिपि के आधार पर निर्धारित किया गया है। मातृका उपलब्ध कराने के लिए मैं प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान का आभारी हूँ। जिन ग्रंथों से इसमें सहायता ली गई है, उनके संपादकों, प्रकाशकों के प्रति आभार।

विश्ववल्लभ के अनुवाद (पाँचवें, छठे व सातवें उल्लास को छोड़कर) में संस्कृतसेवी विद्वान डॉ० श्रीशक्तिकुमारजी शर्मा 'शकुन्त' से सहायता मिली। पाठ तैयार करने में पूर्व सांसद, संस्कृत मनीषी श्री भानुकुमार शास्त्री से यथेष्ट सहायता मिली। दोनों विद्वानों का धन्यवाद, मैं उनका ऋणी हूँ। इसके सुरचिपूर्ण प्रकाशन का उत्तरदायित्व न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली के संचालक भाई साहब श्री सुभाषजी जैन से लिया है, उनके प्रति आभार।

(viii)

लगातार ढाई वर्ष के परिश्रम ने इस समग्र कार्य को पूर्ण किया। इस कार्य में पांडुलिपि तैयार करने से लेकर संदर्भ खोजने, उपस्कारक ग्रंथों को जुटाने और संशोधन कार्य में सहधर्मिणी पुष्पा और पुत्री सौ० अनुभूति तथा अनुज अरविंद चौहान का निरंतर सहयोग और सहकार रहा। इन्हें धन्यवाद कहना अति लघु लगता है, मैं इन सबके स्नेहाधीन हूँ। इस कृति की अच्छाइयाँ प्रभु श्रीनाथजी की कृपा का प्रसाद है और त्रुटियाँ मुझ अल्पज्ञ से हुई हैं, विद्वज्जन इसको सार सहित स्वीकारेंगे और अपनी सम्मति देंगे क्योंकि कहा भी है—भग्नपृष्ठिकटिग्रीवाबद्धमुष्टिरधोमुखं कष्टेनलिखितं शास्त्रं यत्नेनपरिपालयेत्। याद्विंश दृष्टा तादृशं लिखितं मया यदिशुद्धमशुद्धं वा ममदोषोमदीयतां।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

15 दक्षिण सुंदरवास, उदयपुर।
अक्षयतृतीया, वि०सं० 2059

विदुषां वशंवदः
श्रीकृष्ण 'जुगनू'

तृतीय अध्याय

मेवाड़ में वृक्षायुर्वेद की परंपरा -

राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में वृक्षायुर्वेद के संबंध में प्रारंभिक अवधारणा महाराणा कुंभा के आश्रित सूत्रधार मण्डन के 'राजवल्लभ वास्तुशास्त्रम्' में मिलती है। यूँ 'वाटिका' परंपरा का पता तो नगरी से प्राप्त ईसा पूर्व द्वितीय सदी के शिलालेख में मिलती है ही।¹ नगरी अभिलेख में नारायण वाटिका के निर्माण तथा उसके लिए प्राकार निर्माण का जिक्र उपलब्ध है। कुंभलगढ़, कीर्तिस्तंभ आदि प्रशस्तियों में मेवाड़ वर्णन के साथ यहाँ के वानस्पतिक वैभव तथा तडग-उद्यानादि का वर्णन मिलता है।²

मण्डन के विचार

मण्डन सूत्रधार ने महाराणा कुंभा (1433-68 ई०) के समय लिखे अपने ग्रंथ 'राजवल्लभवास्तुशास्त्रम्' में गृह समीप त्याज्य वृक्षों, वृक्षों के परिणाम, वाटिका विकास, उसमें रोपणीय वृक्ष व आवश्यक कृत्य सहित लता पादपादि रोपण मुहूर्त पर विचार किया है। यह कृति राज प्रासादों के निर्माण, वास्तु विन्यास आदि के लिए अति उपयोगी रही है।

मेवाड़ में लिखित यह प्रथम कृति है, जिसकी ओर विदेशी अध्येताओं का ध्यान आकर्षित हुआ था और इसका प्रकाशन योग्य पाठ तैयार हुआ। फ्रांसिसी विद्वान गार्सा द तासी ने हिंदुई साहित्य का इतिहास (इस्त्वार द ल लितरेत्युर ऐंदुई ऐंदुस्तानी, प्रथम प्रकाशन 1839 व 1847 ई०) में लिखा है कि उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में मॉंटगोमरी मार्टिन इंडिया की पहली जिल्द में इसके प्रकाशन की जानकारी दी गई है और लगभग चौदह सौ श्लोकों में निबद्ध इस वास्तु ग्रंथ को भवनों की वास्तुकला का महत्वपूर्ण कोष बताया गया।³

राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् में वृक्ष विषयक विभिन्न विचार वास्तुमतानुसार निहित है। कतिपय निम्न है-

मेवाड़ में वृक्षायुर्वेद की परंपरा

21

गृहसमीपे त्याज्यवृक्षाः

वृक्षा दुग्धसकण्टकाश्च फलिनस्त्याज्या गृहादूरतः
शस्ते चम्पकपाटले च कदली जाती तथा केतकी ।
यामादूर्ध्वमशेषवृक्षसुरजा छाया न शस्ता गृहे
पार्श्वे कस्य हरेरवीशपुरतो जैनानुचण्ड्याः क्रचित् ॥

दुग्धवाले वृक्ष, काँटे वाले वृक्ष और फूल वाले वृक्ष गृह के समीप ठीक नहीं होते। चंपा, गुलाब, केला, जाती, केतकी का रोपण अच्छा है। एक प्रहर दिन के बाद किसी वृक्ष की छाया गृह पर अच्छी नहीं है। ब्रह्मा के मंदिर के पार्श्व में, विष्णु और सूर्य तथा शिव मंदिर के सामने, जिन मंदिर के पीछे और देवी मंदिर के किसी भी भाग में गृह करना शुभद नहीं है।

तत्फलानि-

सदुग्धवृक्षा द्रविणस्य नाशं कुर्वन्ति ते कण्टकिनोऽरिभीतिम् ।
प्रजाविनाशं फलिनः समीपे गृहस्य वर्ज्या कलधौतपुष्पाः ॥

अपने आवास के पास या आवास में दुग्धवाले वृक्ष धन का नाश करते हैं। इसी प्रकार काँटे वाले शत्रुभयदायक और फूल वाले वृक्ष सन्तति नाश के कारण बनते हैं। गृह के समीप पीत पुष्प के पौधों को लगाया जाना शुभ नहीं है।

वृक्षविशेषच्छेदननिषेधः गृहसमीपे शुभवृक्ष-

दुष्टो भूतनिषेवितोऽपि विटपो नोच्छिद्यते शक्तितः
तद्वद्विल्वशमीत्वशोकबकुलौ पुत्रागसच्चम्पकौ ।
द्राक्षापुष्पकमण्डपं च तिलाकान् कृष्णां वपेद्वाडिमीं
सौम्यादेः शुभदौ कपित्थकवटावौदम्बराश्चत्थकौ ॥

जो वृक्ष दुष्ट हो अथवा जिस वृक्ष में भूतादि का वास हो, उसको काटना शुभद नहीं है। बिल्व, शमी, अशोक, मौलेसरी, पुत्राग और चम्पा को काटना शुभ नहीं है। गृह में द्राक्षा, पुष्प का मण्डप, चंदन वृक्ष, पीपल और अनार लगाना शुभद है। गृह से उत्तर केंद्र, पूर्व में वट, दक्षिण में उदुम्बर और पश्चिम में पीपल का पेड़ लगाया जाना शुभ है।

वाटिकाओं की स्थापना पर मण्डन ने गंभीरता से विचार किया है और यह निर्देश दिया है कि राजाओं के निवास के वाम भाग या दक्षिण भाग में क्रीडा के लिए 100, 200 या 300 हाथ लंबाई वाली वाटिकाएँ बनवाकर उनके मध्य नल, प्रपात,

मण्डप और तोय यन्त्र (फव्वारा) लगाने चाहिए। राजसी विलास के लिए ऐसा आवश्यक था।

इस काल तक रहटों का प्रसार भी खूब हो गया था। रहटों को पारसी देन माना जाता है, इसलिए उसे 'पारसी यन्त्र' भी कहा जाता है। साथ ही इसको अरहट या अरघट्ट भी कहा जाता था। प्रारंभ में इसका रूप पृथक् था।¹ मण्डन ने इसके लिए घटीयन्त्र शब्द प्रयुक्त किया है। मण्डन ने कहा है कि वृक्षों को सींचने के लिए सार वृक्षों का रहट भी वाटिकाओं में बनाना ठीक है। कतिपय प्रसंग उल्लेखनीय हैं⁵ -
वाटिकाकरणावश्यकत्वं तल्लक्षणाञ्च-

वामे भाग दक्षिणे वा नृपाणां त्रेधा कार्या क्रीडनार्थम् ।
एकद्वित्रिर्दण्डसंख्या शतं स्यान्मध्ये धारामंडपं तोययन्त्र ॥

राजाओं के गृह के वाम या दक्षिण दिशा में क्रीडागृहों का निर्माण किया जाना चाहिए। वाटिकाएँ सौ, दो सौ तथा तीन सौ हाथ की होनी चाहिए। इसके बीच में जल प्रपात, मण्डप तथा जलयन्त्र भी बनाए जाने चाहिए।

क्षेत्रं सप्तविभागभाजितमतो भद्रं च भागत्रयं
तन्मध्ये जलवापिकाजिनपदैरेकांशतो वेदिका ।
स्तम्भैर्दादशभिश्च मध्यरचितः कोणोषु रूपान्वितः
कर्तव्यो जलयन्त्र एष विधिवद्भागाय पृथ्वीभुजाम् ॥

अर्थात् जलयन्त्र बनाने के स्थान को सात-सात भाग अर्थात् 49 भाग करना चाहिए। इसके बीच में चारों ओर तीन भाग में भद्र या चबूतरा बनाना चाहिए। सबके मध्य में वेदी बनाएँ, मध्य में द्वादश स्तंभयुक्त मण्डप बनाएँ। कोणों को रूपान्वित करना चाहिए। इस प्रकार के जल यन्त्र का निर्माण किया जाना चाहिए।

राजवल्लभ वास्तुशास्त्रम् के नवें अध्याय में वाटिकाओं में लगाने योग्य वृक्षों की सूची दी गई है-

तस्या चम्पककुन्दजातिसुमनोवली च निर्वालिका
जाती हेमसमानकेतकिरपि श्वेता तथा पाटला ।
नारिङ्गः करणी वसन्तलतिका चारक्तपुष्पादिकं
जम्बीरो बदरी च पूगमधुपा जम्बू च चूतद्रुमा ॥
मालूरः कदली च चन्दन वटावश्चत्थपथ्याः शिवा-
श्चिञ्जाशोकदम्बनिम्बतरवः खर्जूरिका दाडिमी ।

कपूर्वागरुकिंशुका हयरिपुः पुत्रागको निम्बुकी
 प्रोक्ता नागलता च बीजानिभृता स्यात्तिन्दुकी लाङ्गली ॥
 द्राक्षैला शतपत्रिकाऽथ बकुला धतुरकङ्गोलकौ
 शालस्तालतमालकौ मुनिवरो मन्दारपारिदुमौ ।
 अन्ये भोग्यविचित्रखाद्यसकलास्ते रोपणीया बुधैर्यान्
 प्राप्नोति च भूतले शुभतरुन् तच्चम्पकान्वापयेत् ॥

वाटिका में रोपण योग्य वृक्षों में चम्पा, कुन्द, चमेली, वेला, निर्वालिका या नरमाली, जाती, पीले फूलों वाली केतकी, श्वेत गुलाब, नारियल, करणी या कनेर, वसन्तलता, लाल पुष्प, जम्बीर या जमेरी नींबू, बदरी, पूग या सुपारी, मधुप या महुआ, चुत या आम, मालूर या बिल्व, कदली, चन्दन, वट, पीपल, पथ्या या हरीतकी, शिवा या आंवला, चिञ्जा या इमली, अशोक, कदम्ब, निम्ब, खजूर, दाडिम कपूर, कपूर, अगर, किंशुक या पलाश, हयरिपु या सफेद कनेर, पाग या जायफल, नींबू, नागलता, बीज, नीसूता या बिजोरा फल, तिंदुकी या तेंदूपत्रा, लांगली या करिहारी, द्राक्षा, एतला या इलायची, शतपत्रिका या सतावरी, बकुल या मौलसरी, धतूर, कंकोल, शाल, ताल, तमाल, मुनिवर या अगस्त, मन्दार, पारिजात आदि मुख्य हैं। वाटिका में और भी उत्तम फूलों के वृक्षों को लगाना चाहिए। चम्पा को सबसे अलग लगाना चाहिए।⁷

आस्थान प्रतिसेचनाय च घटीयन्त्रः सुसारो भवेत्
 दोला स्त्रीजनखेलनाय रुचिरे वर्षावसन्तोत्सवे ।
 बाला प्रौढवधूः सुमध्यवनितागानैर्मनोहारिभि-
 र्ग्रीष्मे शरदकेऽथ शीतलजल क्रीडा शुभे मंडपे ॥

वाटिका में वृक्षों के अभिषेचन के लिए सार वृक्षों की लकड़ी का घटीयन्त्र बनवाना चाहिए। साथ ही वर्षा और वसन्त ऋतु में स्त्रियों के खेलने के लिए हिण्डोला बनवाया जाना चाहिए। ग्रीष्म, शरद ऋतु में शीतल जल क्रीड़ा के निमित्त शुभ मण्डप का निर्माण भी किया जाना चाहिए।

वाटिका विकास का आधार विश्ववल्लभ

'विश्ववल्लभ' की रचना महाराणा प्रताप की उस दूर दृष्टि को दर्शाती है जिसके तहत राजधानी सहित अन्य बड़े नगरों में उद्यानों, वाटिकाओं की स्थापना का कार्य किया जाना था। यद्यपि उस समय अथवा उसके तत्काल बाद चावण्ड में राजधानी स्थापित हो गई थी तथा वहाँ भी इस कृति के आधार पर कोई न कोई उद्यान विकसित

किया गया होगा किंतु वहाँ वर्तमान में वाटिका के अवशेषों की अनुपलब्धता के चलते निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

राणा प्रताप के बाद महाराणा अमरसिंह ने उदयपुर के विकास में रुचि ली तथा कालांतर में यहाँ विभिन्न शासकों, दरबारियों ने वाटिकाओं, उद्यानों के विकास में दिलचस्पी दिखाई। महाराणा कर्णसिंह के समय आहाड़-हस्तिमाता के निकट चम्पाबाग का विकास किया गया। महाराणा राजसिंह ने सर्वऋतु विलास का निर्माण करवाया। 'राजरत्नाकर' के पन्द्रहवें सर्ग से इस बात का बोध होता है कि सर्वऋतु विलास में पुष्पों के कई सारे पेड़ थे।⁹ 'त्रिमुखी बावड़ी की प्रशस्ति' से भी इस बात की पुष्टि होती है। राणा संग्रामसिंह द्वितीय ने सहेलियों की बाड़ी, राणा सज्जनसिंह ने सज्जननिवास उद्यान (गुलाब बाग) की नींव डाली तथा वहाँ विभिन्न प्रजातियों के पौधे लगवाए। उनकी सिंचाई के लिए जलस्रोतों का विकास किया।

इसी तरह उदयपुर के सूरजपोल बाहर रसबाग, हाथीपोल बाहर श्यामलदास बाग, कैलाशपुरी में पार्वती विलास तथा काथा के रास्ते पर गोवर्धन विलास की नींव डाली गई। शहर में कई बाड़ियों का विकास भी हुआ और शासकों ने नगर को बगीचों, उद्यानों से रमणीय बनाया।

ऐसा जान पड़ता है कि इन सबमें 'विश्ववल्लभ' की जानकारी का भरपूर उपयोग किया गया। महाराणा सज्जनसिंह के समय इसी ज्ञान को आधार बनाकर अग्निपुराणोक्त वृक्षायुर्ज्ञानम् (वृक्षायुर्वेद) को 'वाग का चेटा लगावा की क्रिया' नाम से मेवाड़ी में अनूदित किया गया। इस पुस्तक को महाराणा, सज्जनसिंह की आज्ञानुसार कविराजा श्यामलदास की अनुमति से दशोरा कोटेश्वर ने इसे लिखा था।¹⁰ यह कृति 'विश्व वल्लभ' के नए संस्करण के रूप में सामने आई, जो तत्कालीन आवश्यकता और परंपरा को प्रदर्शित करती है।

इस 26 पृष्ठीय पुस्तक में अग्निपुराण के पूर्व वर्णित 13 श्लोक के साथ ही मेवाड़ी लोक जीवन के कई प्रयोगों को संगृहीत किया गया है। श्लोकों का मेवाड़ी में अनुवाद देने के बाद व्याधिग्रस्त पौधों के उपचार की विभिन्न विधियाँ दी गई हैं। कुछ विचित्र प्रयोग भी इसमें लिखे गए हैं। यथा-आम पर जामुन को लगाना, बड़ पर गूलर लगाना, केमरी पर अंजीर लगाना, चमेली के उपर सोनजूही, रायबेल पर मदन बाण, लाल कनेर पर श्वेत फूल, तुम्बा की लता पर कुम्हड़ का फल लेना आदि। कलम लगाने की विधियाँ, पुष्पों का रंग परिवर्तन करना जैसे प्रयोग भी इसमें बताए गए हैं। साथ ही पेड़ संबंधी कुछ टोने-टोटके भी संकलित किए गए हैं।

संदर्भ

1. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद : राजपूताने का इतिहास, जिल्द प्रथम, पृ० 14.
2. एपियोग्राफिका इंडिका, भाग-24, पृ० 314-28.
3. गार्सा द तासी : हिंदुई साहित्य का इतिहास (अनुवाद-लक्ष्मीसागर वाष्ण्य, इलाहाबाद, 1953) पृ० 364.
4. राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् (संपादक-श्रीकृष्ण 'जुगनु', परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली 2004) 1, 28-30.
5. शर्मा रामशरण : भारतीय सामंतवाद (राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994) पृ० 213, इतिहास-शोधपत्रिका के जनवरी-दिसंबर 1994 में प्रकाशित लल्लनजी गोपाल का लेख-अरघट्ट अर्थात फारसीचक्र तथा दैनिक भास्कर (उदयपुर) में मेरा कला की कालकथा स्तंभ में प्रकाशित आलेख 28 मार्च 2004.
6. राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् 9, 23.
7. राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् 9, 21-22, मण्डन कृत 'वास्तुसारमण्डनम्' तथा 'वास्तुमण्डनम्' में भी इन पेड़ों की सूची दी गई है। मंडन का आधार विश्वकर्मा शास्त्र है। अन्य वास्तु विषयक शास्त्रों में तकरीबन इन्हीं पेड़ों का नाम आता है। शास्त्रों में इनके फलफल पर भी विचार किया गया है।
8. सकलतुर्विलासाखिजातैः कुसुमैः पद्मसरोभवैः सरोजैः। राजरत्नाकर (संपादक-मूलचंद पाठक, जोधपुर 2000) 15, 36.
9. श्रीसर्वतुर्विलासाख्यं स्वारामं कृतवांस्तथा। श्लोक 20.
10. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर में इसकी प्रतिलिपि है। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है : श्रीमार्तण्ड वंश मौलिमणि महाराजाधिराज महाराजेंद्र श्री 108 श्री सज्जनसिंहासनामाज्ञानुसारेण कविकुलोद्भव दधिवाडियान्वयोत्पन्न सांवलदासानुमत्या ब्राह्मण दशोराख्य कोटेश्वरेण लिखितेदं पुस्तकं संवत् 1934 अषाढ शुद 15.

उसके वंशक्रम के अनुसार आभानंद का सुखदेव मिश्र हुआ जो मेवाड़ के महाराणा कुंभकर्ण (1433-68 ई०) सहित महाराणा उदयकर्ण (1468-73 ई०) तथा महाराणा रायमल्ल (1473-1508 ई०) के आश्रय में रहा। सुखदेव का पुत्र गजाधर हुआ और गजाधर का पुत्र उग्र मिश्र हुआ। उग्र मिश्र का ही पुत्र चक्रपाणि हुआ जिसने महाराणा प्रताप के दरबार में सम्मान पाया। चित्तौड़ की तलहटी में बसा गाँव पीपली इस परिवार को मिला हुआ था। इस गाँव को महाराणा लाखा (वि०सं० 1439-78) द्वारा दशोरा ब्राह्मणों के पूर्वज, विद्वान झोटिंग भट्ट को दिए जाने उल्लेख एकलिंग जी मंदिर के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के श्लोक संख्या 30-40 में मिलता है—लक्ष क्षोणिपति द्विजाय विदुषे झोटिंग नाम्ने ददौ ग्राम पिप्पलिकामुदार विधिनाराहपरुद्धैरवो।

किंतु एक किंवदंती से यह बोध होता है कि बेडूच नदी के कारण पीपली को मिश्र परिवार को दिया गया क्योंकि यह परिवार माथुरेय था और यमुनाजी के प्रति इसकी विशेष आस्था थी और महाराणा रायमल ने उसे नदी प्रवाह क्षेत्र के रूप में पीपली गाँव दिया। दशोरा जाति में यह मान्यता चली आ रही है कि पीपली में दो दशोरा भाइयों का कत्ल हो गया और आत्मोत्सर्ग करने जा रही एक की स्त्री ने यह श्राप दिया कि कोई भी दशोरा पीपली का पानी न पीए। अन्यथा उसका वंश निर्मूल हो जाएगा। रायमल ने वि०सं० 1552 (1495 ई०) को वैशाखी अमावस के दिन दशोरों को सांवता नामक गाँव दिया जिसका ताम्रपत्र अभी मौजूद है, सांवता (चित्तौड़गढ़) गाँव के श्री रमेशचंद्र दशोरा के पास मैंने इसको पढ़ा। बहुत संभव है कि माथुरेय मिश्रों को रायमल ने ही पीपली गाँव दिया था।

आज भी पीपली गाँव को 'मिश्रों की पीपली' ही कहा जाता है। महाराणा राजसिंह कालीन संवत् 1713 (1656 ई०) की परगना बही में भी इस गाँव को मिश्रों के पास ही बताया गया है, तब यह तलैटी परगने में था और यहाँ से पंद्रह सौ रुपये का राजस्व प्राप्त होता था। गंगरार परगने का गेणिया गाँव भी तब मिश्रों के पास था। वैसे चक्रपाणि का पुत्र कल्याण मिश्र हुआ जो महाराणा अमरसिंह का विश्वासपात्र था। इस प्रकार मेवाड़ में दो गाँव महाराणाप्रताप के सौ साल बाद भी मिश्रों के पास थे।

महाराणा प्रताप की रुचि का बोध

विश्व वल्लभ से महाराणा प्रताप की रुचि का पता भी चलता है। महाराणा प्रताप के अपने परिवेश और पर्यावरण से लगाव और उसके विकास के प्रति सचेष्ट रहने की जानकारी भी मिलती है। इसके रचनाकाल से यह जानकारी मिलती है कि

जल संसाधनों पर बल

45

यह हल्दीघाटी युद्ध 1576 ई० के ठीक एक साल बाद लिखी गई। इस समय प्रताप कोल्यारी या झाड़ोल के निकट स्थित आवरगढ़ में अपनी अस्थायी राजधानी बसावट के कार्य में व्यस्त अथवा चावण्ड को विकसित करने पर विचार कर रहा था। चूंकि आवरगढ़ में पानी और वाटिका के निर्माण की आवश्यकता थी, ऐसे में प्रताप ने निश्चित रूप से चक्रपाणि को इस दिशा में पारंपरिक जानकारियों के संग्रह का निर्देश दिया होगा।

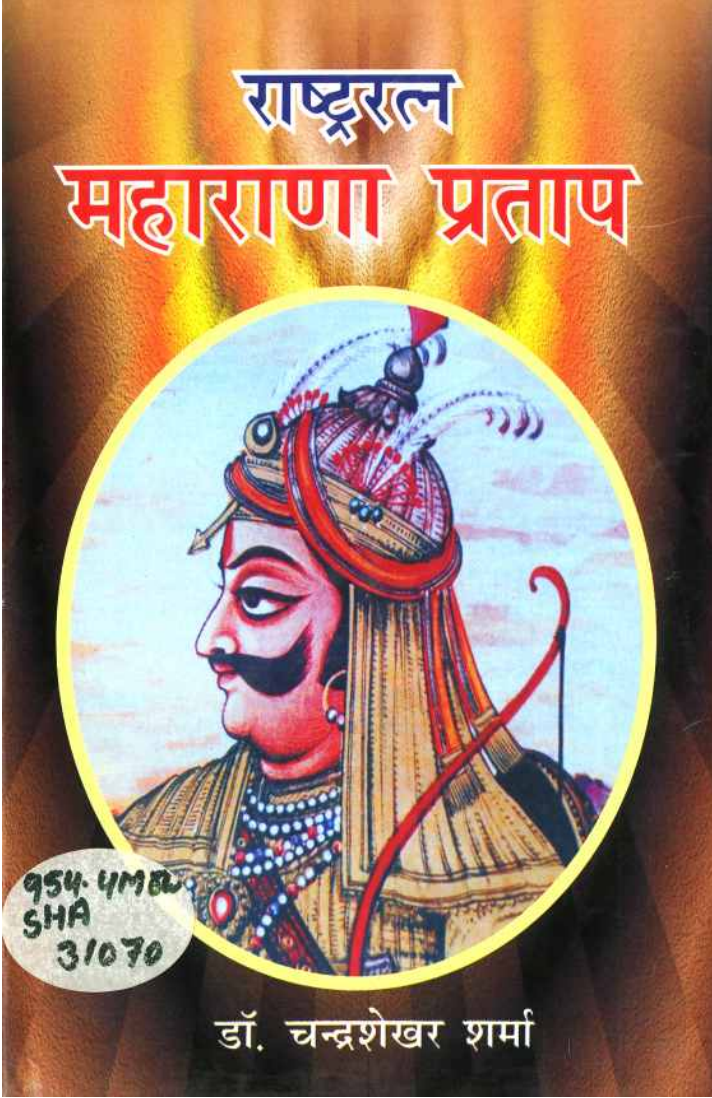
चक्रपाणि ने राजाज्ञा का उल्लेख किया है। साथ ही पहाड़ी प्रदेश में पाई जाने वाली विशेषताओं के साथ वहाँ चट्टानों में प्राप्य जलस्रोतों का जिक्र किया है। पहाड़ों के बीच द्रोणी बनाने का जिक्र किया है। यह सारा वर्णन झाड़ोल और चावण्ड जैसे पहाड़ी क्षेत्रों के संदर्भ में ही विचारणीय है। बहुत संभव है कि आवरगढ़ में जिस जलाशय के अवशेष मौजूद हैं, उसका निर्माण चक्रपाणि के ग्रंथ लेखन के समय ही हुआ होगा और उसमें चक्रपाणि के निर्देशों का पालन किया होगा। कूप-कुण्डों के निर्माण में भी उसके निर्देशों पर अमल किया गया है।

चावण्ड का कुण्ड तो चक्रपाणि के निर्देशानुसार ही बना हुआ है। उस काल में चावण्ड में वाटिका का विकास भी हुआ ही होगा। यह अनुमान किया जा सकता है कि चावण्ड में महाराणा प्रताप के जो महल बने हैं, उनके दक्षिण या ईशान कोण में कोई वाटिका जरूर रही होगी। चार सौ वर्षों के अंतराल में उक्त उपवन का विनाश हो गया।

संदर्भ

1. बृहत्संहिता 54, 125.
2. विश्ववल्ग 2, 2.
3. तुलनीय-राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् (सूत्रधार मंडन) 4, 27, विश्ववल्ग 2, 14-16 और दीपार्णव (संपादक-प्रभाशंकर ओषध्भाई सोमपुरा, पालीताणा 1970) 18, 2-4. अपराजितपुच्छ (पोषटभाई अंबाशंकर मनकड़ बड़ौदा ऑरियंटल इंस्टीट्यूट, बड़ोदरा 1950) 74, 1-7.
4. राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् 4, 27, अ० पृ० 74, 81.
5. तुलनीय-राजवल्लभ वास्तुशास्त्रम् 4, 28 विश्ववल्ग 2, 11, 12, दीपार्णव 18, 5-6 तथा अ०पृ० 74, 9-11.
6. तुलनीय-राज०वा० 4, 29 वि०व० 2, 11-12 दीपा० 18, 25-26, अ० पृ० 74, 32-36.
7. तुलनीय-राज०वा० 4, 30 वि०व० 2, 6 दीपा० 18, 27.
8. तुलनीय-राज०वा० 4, 31-32 वि०व० 2, 4-5 व 19-20 दीपा० 18, 7-8, अ० पृ० 74, 12-31.
9. विश्ववल्ग 2, 7.

RASHTRARATAN MAHARANA PRATAP
————— *2008* —————



This document is extracted from the book titled
'Rashtraratan Maharana Pratap'

Author: Dr. Chandra Shekhar Sharma

Published by Aaryawat Sanskriti Sansthan, Delhi

Printing at B.K. Offset, Delhi

प्रकाशक : आर्यावर्त संस्कृति संस्थान
बी-216 चन्दू नगर, करावल नगर रोड,
दिल्ली-110094



मूल्य : 300.00 रुपये

प्रथम संस्करण : 2008

ISBN : 978-81-906449-0-7

आवरण : निर्दोष त्यागी

शब्द-संयोजन : प्रिंस कम्प्यूटर्स
बी-219 चन्दू नगर,
करावल नगर रोड, दिल्ली-110094

मुद्रक : बी. के. आर्फसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

अपराजितपृच्छा, समरांगण सूत्रधार और मयमतम् में इस प्रकार की योजनाएं महलों के प्रसंग में प्राप्त होती हैं।

इसी प्रसंग में उदय की पहाड़ियों पर चर्चा समीचीन होगी। ये उदयपुर से दक्षिण में 65 किलोमीटर ऋषभदेव के पास स्थित हैं। अकबर द्वारा 5 अप्रैल 1579 ई. को उदयपुर में लूटमार मचाने व जावर तक प्रताप का पीछा करने के बाद राणा इस क्षेत्र में आ गया था। वस्तुतः 1579 ई. में कुंभलगढ़ पर मुगलों का अधिकार होने से प्रताप का शेष मेवाड़ से सम्पर्क कट गया था।¹⁰ अतः यह निश्चित है कि यह समय प्रताप का उदय की पहाड़ियों में ही निकला था। इस प्रवास के बाद ही प्रताप ने चावण्ड में राजधानी कायम की थी। उदय की पहाड़ियों पर प्रताप ने अपने निवास के पास ही एक बावड़ी का निर्माण करवाया था। यह बावड़ी चूहे के बिल के आकार की बनी हुई है। यहाँ जंगली जानवर भी आसानी से पानी पी सकते हैं। यहीं प्रताप ने पहाड़ी के ऊँचे भाग पर सैन्य क्षेत्र भी बनाया था। सैनिकों के पानी पीने के लिए 50 मी. वर्गाकार में लगभग 20 फीट गहरा हौद भी खुदवाया था। संभवतया यहाँ हाथी भी बांधे जाते थे। इसी के पास एक छोटे तालाब का निर्माण भी प्रताप ने करवाया था जिसमें वर्ष में 3 माह को छोड़कर पूरे 9 माह पानी भरा रहता था। यहाँ फसल उत्पादन भी होता था। प्रताप ने अपने निवास से कुछ दूरी पर ही एक अन्य बावड़ी का निर्माण भी करवाया था जो कि पेयजल एवं सिंचाई दोनों के लिए काम आती थी।

इस तरह प्रताप के सम्बन्धित सभी स्थलों यथा हल्दीघाटी, कुंभलगढ़, उदयपुर, गोगुन्दा, मायरा की गुफा, धोलीयाजी के महल, राणा गांव, मचीन्द रोहिड़ा, उबेश्वर, बदराना, जावर माला आदि से यह प्रमाणित होता है कि प्रताप ने सभी स्थानों पर जल-प्रबन्ध का पूरा-पूरा ध्यान रखा था। धर्मशास्त्र की दृष्टि से यह कार्य 'मूर्त' संज्ञक पुण्य की कोटि में आता है।

पादप एवं कृषि विज्ञान

मध्यकाल में प्रताप के समय ही प्रथम बार पौराणिक आधार पर चल रहे भू विभाजन - (1) जांगल प्रदेश (2) अनूप प्रदेश (3) मरु प्रदेश को आगे बढ़ाते हुए उसमें साधारण तथा पर्वतान्वित प्रदेशों को जोड़ा गया। क्योंकि, मेवाड़ के लिए यह वर्गीकरण भौगोलिक रूप से परम आवश्यक था। इसकी प्रताप ने आज्ञा दी थी।¹¹ जल संधारण एवं वनस्पति विकास इसका मूल उद्देश्य था। इसके प्रमुख आयाम इस प्रकार हैं -

भूमि की परख

(i) रस के आधार पर – परम्परागत रूप से भूमि को रंग, वनस्पति एवं जल भरण के आधार पर वर्गीकृत किया गया था जबकि प्रताप के काल में भूमि वर्गीकरण का आधार अम्लीय, लवणीय, क्षारीय रस को बनाया गया। जिसका निर्धारण चख कर किया जाने लगा। इसी को आधार बना कृषि एवं वृक्षारोपण पर कार्य किया गया। मध्यकालीन इतिहास में इस तरह का उदाहरण अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। यह महाराणा प्रताप की आज्ञा से दरबारी चक्रपाणि मिश्र का मौलिक प्रयोग था।

(ii) भूमिगत जीवों के आधार पर – इस क्षेत्र में मिलने वाले भूमिगत जीवों के आधार पर भी भूमि का निर्धारण किया गया। यथा – गोह, पीले रंग के मेंढक, दीमक, चूहा विश्वंभरक सोंप और भू-मत्स्य कितनी गहराई पर मिलते हैं, इसको आधार बनाकर भूमि एवं जीवों की प्रकृति के बारे में भी अध्ययन किया गया। सारस्वत मुनि, मनु, बलदेव और वराहमिहिर के इस ज्ञान का व्यावहारिक रूप हमें प्रताप के काल में देखने को मिलता है।

प्रताप के काल में वृक्षायुर्वेद के अन्तर्गत कृषि में होने वाली कीट व्याधियों को पहचाना एवं उनके निराकरण के सुझाव भी दिये गये। यथा –

- (i) आभ्यंतरिक कृमि
- (ii) बाह्य कृमि

वृक्षों की वात, पित्त, कफादि लक्षणों के अनुसार चिकित्सा भी की जाने लगी थी। ये विधियाँ पारम्परिक वृक्षायुर्वेद¹² के आधार पर थी परन्तु विद्युत्दाह से जले पेड़, बांझवृक्ष और वृद्ध पेड़ों का पुनर्दोहन इस काल की मौलिकता के द्योतक हैं। साथ ही पौधों की मन्त्रों द्वारा भी सुरक्षा की विधि अपनाई गई।¹³ कृषि क्षेत्र से उत्पादित शाक-तरकारियों की पैदावार बढ़ाने एवं नस्ल संवर्धन का कार्य भी किया गया। अनस्थि (बिना गुठली) वाले फल लेने के उपायों को भी खोजा गया। तिल, जौ, दाल, सरसों की पैदावार बढ़ाने के प्रयोग हुए। पशुओं के लिए घास की पैदावार को भी उन्नत करने के प्रयास किये गये। वस्त्रों के लिए कपास के उत्पादन पर भी ध्यान दिया गया जिसके अन्तर्गत लाल, नीले आदि रंगीन कपास की नस्लों का संवर्धन हुआ।

फूलों की फसल के रूप में

गुलाब, कुमुदिनी, केतकी जैसे फूलों पर प्रयोग करके खाद एवं औषधि प्रयोग द्वारा कलमें लगाने एवं संकरीकरण पर जोर दिया गया ताकि फूलों की पैदावार बढ़ सके। पुष्पों को और भी अधिक सुगन्धित करने और नए रंग वाले की विधियाँ खोजी गईं। यहाँ तक कि खुशबू रहित माने गए पलाश

(खाखरे, ढांक) के फूल को भी सुगन्धित करने की विधि उस समय खोज ली गई थी।¹⁴

पादप विज्ञान का अध्ययन ऋतुओं को आधार बना कर किया गया था। ऋतु की अनुकूलता के आधार पर पौधों के रोपण, पौधों का वर्गीकरण, रोपण में त्याज्यकाल एवं श्रेष्ठ रोपण काल का निर्धारण किया गया। प्राचीनकाल से चली आ रही वृक्ष संवर्धन एवं सुरक्षा की विधियों को भी पुनर्जीवित किया गया यथा –

- (1) वृक्षों के कृमि विनाश हेतु पलाश का प्रयोग,
- (2) वृक्षों की टहनी में बीज रखकर संकरीकरण,
- (3) अशोक वृक्ष के विकास हेतु "रमणीपदाघात प्रयोग" और
- (4) वृक्ष पोषण हेतु "रमणीमुख आसव" की विधि।

निश्चय ही प्रताप एक प्रयोगधर्मी शासक था। जल एवं कृषि पर शोध एवं अनुसंधान उसके शान्तिकाल की देन थे। पं. चक्रपाणि मिश्र ने "विश्ववल्लभ" नामक ग्रन्थ की रचना हल्दीघाटी युद्ध (1576 ई.) के दो वर्ष बाद की थी। इससे सिद्ध होता है कि प्रताप ने गोगुन्दा में रहते हुए ही इस दिशा में चिन्तन प्रारम्भ कर दिया था, तभी उसको मूर्तरूप विभिन्न राजनीतिक विषमताओं एवं संघर्षकाल में भी मेवाड़ को दे पाया था। मेवाड़ में हर गांव और नगर में बाग-बगीचों का मिलना प्रताप की इस दृष्टि की ही देन है। इसी आधार पर आगे चल कर शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह ने 'नुस्खा दर फन्नी फलाहत' पुस्तक का फारसी भाषा में प्रणयन किया।

ज्योतिष एवं नक्षत्र विद्या को प्रोत्साहन

प्रारम्भिक रूप से ग्रह एवं नक्षत्रों की मान्यता एवं इनके मानव जगत अथवा चराचर पर पड़ने वाले प्रभावों के प्रति चिन्तन ज्योतिष एवं नक्षत्र शास्त्र के रूप में भारत में ही देखने को मिलता है। एक वेदांग¹⁵ के रूप में ज्योतिष विद्या की मान्यता इसकी प्राचीनता को सिद्ध कर देती है। ज्योतिष के कई आचार्य हुए। वेदांग ज्योतिष के बाद गर्ग संहिता, नारद संहिता, काश्यप संहिता, वारहस्पत्य संहिता, प्रभृति ग्रंथ प्रधान रहे हैं। आर्यभट्ट के बाद वराहमिहिर¹⁶, लल्लाचार्य¹⁷, श्रीपति¹⁸, भास्कराचार्य¹⁹ आदि की रचनाएँ प्रताप के पूर्ववर्ती काल से ही उपलब्ध थीं। गर्गादि कई संहिताओं²⁰ में भी ज्योतिषीय गणनाओं एवं मुहूर्तशास्त्र के सिद्धान्तों का वर्णन आता है। इस कारण यह विद्या राजा से लेकर जन-जन तक सर्वमान्य होकर राज एवं समाज में सामान्य रूप से प्रचलित थी। वृहस्पति का मत है कि चिकित्सक, ज्योतिषी और मंत्र वादिन का संग्रह करना चाहिए। (वारहस्पत्य 1, 87) मत्स्य

पुराण में भी यह मान्यता है। वृहत्संहिता में ज्योतिषी को राजा की आँख कहा है और राजमार्तण्ड में भी ज्योतिषी को राज्याश्रय देने पर जोर दिया गया है। महाराणा प्रताप का काल भी इस विद्या की उत्तरोत्तर वृद्धि का काल कहा जा सकता है। उस समय इसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता भी बढ़ गई थी। हालांकि महाराणा कुम्भा के समय भी ज्योतिष पर शास्त्रों की रचना हुई परंतु वे वास्तुविद्या के रूप में ही अपनी पहचान बना पाई। 'राजवत्सलभ' में ज्योतिष विद्या को भी वास्तुविद्या के सन्दर्भ में ही लिया गया था परन्तु प्रताप ने पं. चक्रपाणि मिश्र से 'राज्याभिषेक पद्धति' और 'मुहूर्त'²¹ जैसे विषयों पर लेखन करवाया। इससे प्रताप की अभिरुचियों का दिग्दर्शन हो जाता है। 1575 ई. में पं. चक्रपाणि ने ज्योतिष विषय पर अपनी पुस्तक का लेखन पूर्ण कर लिया था। इसमें दो विरचनों²² में संस्कृत के सरल अनुष्टुप छन्द में समग्र विषय को लिखा है। मध्यकाल में दक्षिण भारत को छोड़कर मेवाड़ में प्रताप के काल में ही इस तरह का सृजन हुआ। कुछ समय बाद अकबर ने भी इस दिशा में पहल की और काशी के प्रसिद्ध पंडित रामदेवज्ञ से मुहूर्तचिंतामणि नामक मुहूर्त ग्रंथ और राम विनोद नामकरण ग्रंथ लिखवाया। कालान्तर में जयसिंह (जयपुर) एवं राजसिंह (मेवाड़) ने प्रेरणा लेकर कार्य किया। धीरे-धीरे काशी, गुजरात, कच्छ, जयपुर आदि स्थानों पर विविध प्रकार के मुहूर्त ग्रन्थों के 'प्रणयन' की परम्परा प्रारम्भ हुई और प्रताप का यह चिन्तन ही कालान्तर में सौर वेदशालाओं का प्रेरक बना।²³ भारत में मुहूर्त नामाभिधान से 'मुहूर्तमाला' पहला राज्याश्रय में लिखा ग्रंथ है।

प्रताप के काल में 'नरपतिजयचर्या स्वरोदयशास्त्र' के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया था। इसका कारण इसकी व्यवहारिक आवश्यकता थी। उस समय मेवाड़ में मुगल प्रतिरोध के कारण निरन्तर युद्ध की संभावनाएं बनी हुई थीं। इसमें विजय और पराजय के द्योतक शकुनों एवं युद्धारम्भ के लिए सूर्य एवं चन्द्र स्वर के अनुसार निर्णयों, विविध चक्रों के अनुसार जयाजय पर विशेष ध्यान आकर्षित किया गया था। उदाहरण के लिए 'अमर काव्यम्' में आए एक श्लोक 'प्रताप सिंहस्यतु कुन्तमूर्ध्नि स्थितेति देवी शकुनी जगद्। राणत्वया मारित (मामसित) एव शत्रुर्जानिह चित्रं शकुनी त्वयोक्तम्' (17, 64) का सामान्यतः यह अर्थ किया गया है कि प्रतापसिंह के भाले की नोक पर स्थित देवी शकुनी ने कहा कि राणा! शत्रु तुम्हारे मारे हुए ही समझो। प्रताप ने कहा वे यहाँ ? उसने कहा सत्य ही। प्रताप ने कहा – कैसे आएगा ? फिर उसने कहा – "मैं लाऊंगी।" इसका आशय यह है कि एक दिन शकुन की जानकार देवी ने (नरपति जयचर्या वर्णित) कुंतचक्र का चित्र बनाकर (नक्षत्र

कालजयी मनोबल, मूल्यों के प्रति आस्था, परदुःखकातरता, कष्ट सहिष्णुता, अटूट धैर्य एवं अडिग निश्चय से सैन्य सहयोगियों को दीर्घकालीन संघर्ष की प्रेरणा मिली जिससे मेवाड़ की मान-मर्यादा अक्षुण्ण रह पाई। निःस्वार्थ भावना को जन-जन ने अपनाया, अभावों की परवाह किये बिना ही सभी ने अपना जीवन लक्ष्य निश्चित किया। सामूहिक हित पर स्वहित को न्यौछावर कर, भेदभाव विहीन व्यवहार कर, आम जनसमुदाय के कष्ट व हितों को सर्वोपरि मानकर प्रताप ने ऐसे नेतृत्व की छाप छोड़ी जो कि भारतीय इतिहास एवं राजनीति में नेतृत्व के मानदण्ड स्थिर कर सकती है। इसी कारण तत्कालीन साहित्य जो कि समाज का दर्पण कहलाता है प्रताप का ऐसा चित्रांकन करता है जो सदैव जीजीविषु राष्ट्र एवं समाज के लिए आचरणीय रहेगा -

“सुखहित स्याल समाज हिंदु अकबर बस हुआ
रोसीलो मृगराज, पजे न राणा प्रताप सी।”

प्रजातंत्रोन्मुख वैश्विक परिदृश्य में प्रताप का व्यक्तिगत चरित्र, स्वाभिमान निर्लोमिता, अहंकार शून्यता, मूल्य एवं सिद्धान्तों के प्रति संघर्ष का जीवट मील का पत्थर है जो भटकों को मार्ग बता सकता है, लक्ष्य का नैकट्य-सामीप्य प्रकट कर सकता है।

(3) मध्यकालीन धर्मान्धता के अपवाद के रूप में

मध्यकाल में सोलहवीं एवं सत्रहवीं सदी विशेष रूप से धर्म के क्षेत्र में संक्रातिकाल के रूप में पहचानी जाती है। जहाँ विदेशी शक्तियों का धर्म, जातिगत गठबन्धन के आधार पर अन्यान्य देशों में अपने साम्राज्य विस्तार की महत्त्वाकांक्षा सुदीर्घ रूप से परवान पर थी। सामाजिक ढाँचा भी इन संकीर्णताओं से चरमरा सा गया था; धार्मिक एवं समाज सुधार आन्दोलनों की उत्पत्ति इसी कारण हुई थी। जहाँ अकबर ने भी भारतीय धर्म, समाज व राजनीति में स्थायित्व प्राप्त करने के लिए छद्म धर्म निरपेक्षता का सहारा लेकर अपनी जड़ों को फँलाना शुरू कर दिया था वहाँ प्रताप ने पवित्र मन से सभी धर्मों के सम्मान की अपनी सांस्कृतिक एवं कुल मर्यादा का दृढ़ता पूर्वक पालना किया। अकबर के आश्रित राज्यों में धर्म की कट्टरता के कई उदाहरण मिल जाते हैं परंतु, मेवाड़ में ऐसा एक भी दृष्टान्त नहीं मिलता जिससे प्रताप की धर्म समभाव की नीति पर आक्षेप किया जा सके। अकबर ने जहाँ युद्ध में जीते हाथी 'राम प्रसाद' का नाम भी 'पीर प्रसाद' कर दिया था, प्रताप के विरुद्ध सैन्य अभियानों के सेनापतियों को भी बार-बार धर्म व

जातिगत आधार पर बदलना धर्म के कूटनीतिक इस्तेमाल को स्पष्ट कर देता है। वहीं, मेवाड़ में पठान हकीम खां सूर भी हल्दीघाटी के युद्ध में प्रताप के प्राणों की रक्षा के लिए अपने प्राणों को होम देता है। नसिरुद्दीन (निसारदी) नामक चित्रकार शान्तिकाल में प्रताप के युग को सृजनशील बनाने में लगा रहता है।

भारतीय संस्कृति एवं परम्परा में धर्म हमेशा कर्तव्य एवं नैतिकता से समन्वित रहा है। इस स्वरूप का यथावत् पालन विषमताओं में भी मेवाड़ को संगठित रखे हुए रहा। यह प्रताप का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

(4) पर्यावरण, कृषि एवं सैन्य में अभिनव प्रयोगों के प्रणेता के रूप में

प्रताप ने अपनी सैन्यनीति में परिवर्तन का आधार इतिहास एवं भूगोल की संवेदनाओं को ग्रहण करके प्राप्त किया था। अपने पिता उदयसिंह की राजधानी परिवर्तन की दूरदृष्टि को समझते हुए इस नीति को अपने शासनकाल में कई बार सफल प्रयोग में लाया। गुरिल्ला युद्ध नीति के द्वारा ही वह तलवारों से बारूद का, कम सेना से विशाल सेना का मुकाबला कर पाया। सेना में नये प्रयोगों के अन्तर्गत ही उसने समाज के सभी वर्गों का उनकी योग्यता एवं कार्य कुशलता के अनुसार कार्य एवं श्रम विभाजन किया। आदिवासी जातियों के नैसर्गिक क्रियाकलापों को युद्ध नीति में सार्थक उपयोग करके दीर्घावधि युद्ध को अंजाम दिया। प्रताप ने किसी प्रसिद्ध दुर्ग विशेष का निर्माण न कर सम्पूर्ण मेवाड़ के परिधि क्षेत्र को ही एक दुर्ग के रूप में संरचना दे दी थी, प्रवेश मार्ग हो, चाहे पर्वत की कन्दरा, मैदान हो अथवा पर्वत शृंखला – सभी को आपसी सैन्य सेवाओं से जोड़कर मुगल सेनापतियों को हमेशा भयभीत रखा एवं अन्ततः विवश हो अकबर को मेवाड़ से मुँह मोड़ना ही पड़ा। इस सफलता का श्रेय उसके उर्वर मस्तिष्क को जाता है जिसने निर्भय व आश्वस्त होकर नये-नये प्रयोग किये।

मूलतः प्रताप ऐसा प्रयोगधर्मी शासक हुआ है जिसने सभी मोर्चों पर संघर्ष करते हुए भी भारत देश की आत्मा के रूप में कृषि को पहचानते हुए उसे संरक्षण एवं पर्यावरण का सहकार उपलब्ध कराया जो कि आर्थिक दृष्टि से भी मानव जाति के जीवन एवं आजीविका के लिए एक महत्त्वपूर्ण जीवन रेखा बन सकता है यथा – प्रताप कालीन रचना 'विश्ववल्लभ' कृषि, जल एवं वृक्षायुर्वेद की परम्परागत विधियों के साथ एक वैज्ञानिक सोच को प्रकट करती है –

प्रताप : प्रासंगिकता एवं अवदान • 179

(1) उदकार्गल निरूपण – विभिन्न प्रकार की भूमि के प्रकारों – अनूप, मरू, जांगल पार्वत्यादि स्थानों में भूमिगत जल स्रोतों का पता लगाने की वैज्ञानिक विधियाँ खोजना और परिस्थिकीय, प्राणी विज्ञान और भूगर्भ विज्ञान की संकल्पना।

(2) कूप-सरोवरादि खनन – भू-जल खोज करने के बाद वहाँ कूप, कुण्ड, वापी, सरोवर निर्माण की विधियाँ। मरूभूमि और जांगल प्रदेश के लिए ये ही विधियाँ उपयोगी हैं।

(3) मृदा परीक्षण – भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टियों का वर्गीकरण और परीक्षण को आधार बनाकर उनमें वृक्षों, पौधों, फसलों का रोपण ताकि कम क्षेत्र द्वारा भी अधिकाधिक उपार्जन किया जा सके।

(4) पौधरोपण – विभिन्न प्रकार के पौधों के निश्चित हाथ प्रमाण-अंतराल पर उत्तममध्यमाधम रोपण की विधियाँ।

(5) सिंचन – ऋतु एवं भूमि के लवणों के आधार पर वृक्षों को, फसल को पानी देने की मात्रा सुनिश्चित करना।

(6) वृक्षायुर्वेद – वृक्षों की प्राकृतिक आपदाओं के साथ-साथ आग, धूल, व कीटाणुओं से रक्षा; खरपतवार का मत्स्य जल, कुणप जल का खाद के रूप में उपयोग, कीटनाशक का उपयोग, विभिन्न वृक्षों को संयुक्त कर कीटनाशकों का निर्माण। वृक्षों की रोग प्रतिरोधी क्षमता को बढ़ाने के विभिन्न प्रयास।

(7) फसल, वृक्ष, फल, फूल के रंग, स्वाद, गन्ध आदि में परिवर्तन एवं संकरीकरण द्वारा नस्लों का परिवर्द्धन।

जलकर्मियों, शिल्पियों, कृषकों, बागवानों के लिए एक प्रकार से प्रताप ने विश्वविद्यालय का विचार भी दे डाला।

भारतीय काव्य-पुरुष के रूप में प्रताप की प्रासंगिकता एवं अवदान

सत्य की खोज एवं सत्य की व्याख्या करना किंवा सत्य का आराधन ही इतिहास का मूल उत्सव एवं ध्येय रहा है। भारतीय इतिहास लेखन भी मूल्य एवं उद्देश्यपरक सत्य की व्याख्या का आग्रह करता है साहित्य प्रकारान्तर से इतिहास का ही वह रूप है जो मात्र सत्य की नहीं, अपितु "सत्य-शिव-सुन्दरम्" की मनीषा से संचालित होता है इसी कारण साहित्य समाज का दर्पण भी कहलाता है। प्रायः इतिहास एवं साहित्य एक दूसरे के पूरक के रूप में भी कार्य करते हैं। अतः किसी भी इतिहास पुरुष के आकलन एवं अवदान की स्वीकृति साहित्य के संस्पर्श के बिना अधूरी ही रह जाती है। अतः काव्य-पुरुष

180 * राष्ट्र रत्न महाराणा प्रताप

के रूप में विगत 400 वर्षों में जो प्रताप का स्वरूप स्पष्ट हुआ है वह प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से ऐतिहासिक तथ्यों की गवाही ही देता है। साहित्य एवं इतिहास सदैव सन्तुलन (Harmony), क्रम (Order), आकर्षण (Gravitation), स्थिति कारण (force of existence) की परिधि को ही समेटे हुए होते हैं। भारतीय मनीषा में श्रेय एवं प्रेय की कसौटी पर ही व्यक्तित्व को कसकर उसका निर्धारण करने की परम्परा रही है। इसी शृंखला के रूप में प्रताप को सीसोदिया कुलभूषण एवं स्वतंत्रता के उपासक के रूप में देखा गया है। इतिवृत्त लेखक जहाँ ठोस परिणिति की व्याख्या करते हैं, वहीं साहित्य उस परिणिति की पृष्ठभूमि में छिपी भावनाओं को भी अपने लेखन में समन्वित कर व्याख्या करने का प्रयास करता है।

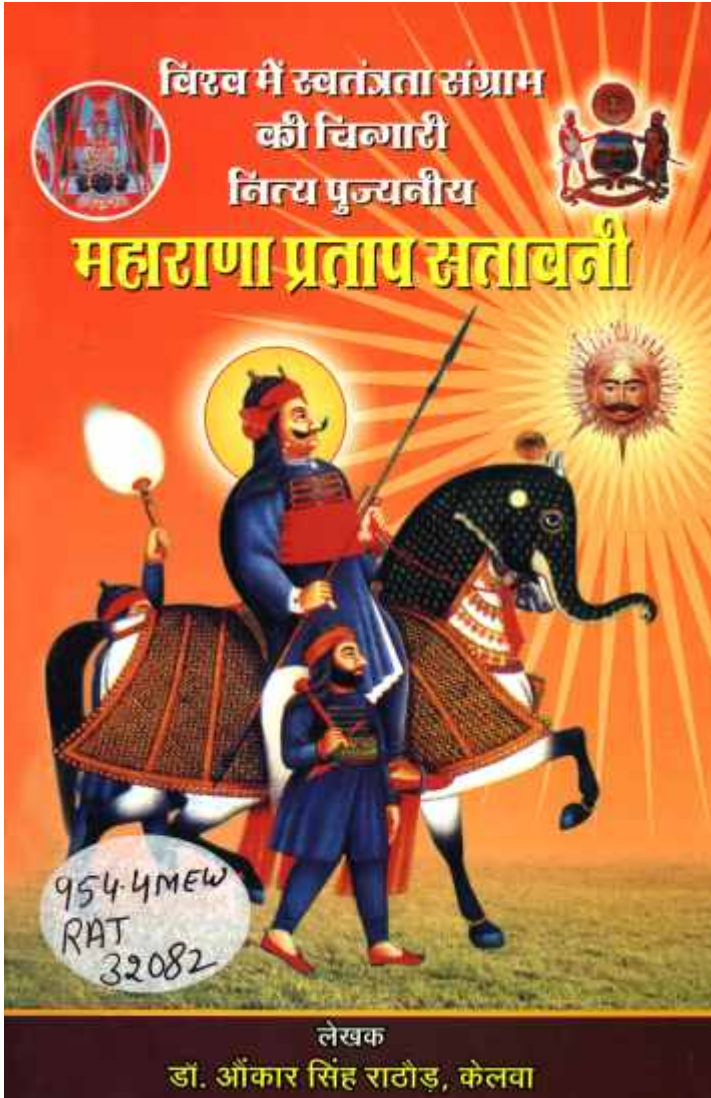
प्रताप के व्यक्तित्व एवं कृतित्व विषयक गीत, कवित्त, छप्पय, निसाणी, दूहा, मरसिया, सोरठा छन्द, उपन्यास, कहानी आदि में जो रचनाएँ प्राप्त होती हैं उनमें प्रताप के शौर्य, साहस, स्वाभिमान, कुल व धर्म की रक्षा, युद्ध कौशल आदि की प्रशंसा के साथ-साथ सहयोगी वीरों के बलिदान का भी सांगोपांग वर्णन मिलता है। उनके समकालीन कवियों पंचक्रपाणि मिश्र, पृथ्वीराज राठौड़, जाड़ा मेहड़ू, दुरसा आढ़ा, रामा सांदू एवं गोस्धन बोगसा, सूरापच टापरिया, रतन गढ़वी आदि अनेकानेक परवर्ती कवियों ने भी प्रताप के यश शरीर का शृंगार किया है। प्रताप प्रारम्भ से ही भारतीय साहित्यकारों के आराध्य एवं प्रेरणास्रोत रहे हैं। साहित्य में प्रताप के कारण हल्दीघाटी को भी राष्ट्रीय तीर्थ के रूप में उजागर किया है। पद्य लेखकों ने पद्य लिखकर, गद्य लेखकों ने गद्य लिखकर और वीर लोगों ने हल्दीघाटी की धूल को ललाट पर लगा अपने आपको कृतकृत्य किया है। प्रायः समस्त भारतीय साहित्य पर महाराणा प्रताप का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। कर्नल टॉड के कारण भारत की अनेक प्रादेशिक भाषाओं में भी प्रताप पर साहित्य सृजन हुआ है यथा –

संस्कृत साहित्य

प्रताप का गुरुभ्राता, दैवज्ञ, वनस्पति विज्ञानी और तिथि-मुहूर्त दिग्दर्शक चक्रपाणि मिश्र तो उनके चंद्र व्यक्तित्व पर चातक की भांति न्यौछावर था। वह कहता है निखिल पृथ्वी के नृपति चित्रकूट-इन्द्र प्रताप को नमन करते हैं –

अकूत जनपदानां वैष्णवा येन लोका नृप
नृमित परालं चित्रकूटाचयेन्द्र (मुहूर्तमाला 2, 109)

MAHARANA PRATAP SATAVANI
————— *2010* —————



This document is extracted from the book titled
'Maharana Pratap Satavani'
Author: Dr. Omkar Singh Rathore
Printing at Quality Printers, Udaipur

महाराणा प्रताप सतावनी

चिराग प्रकाशन
3-श्व-19, अभमन्यू मार्ग
प्रभात नगर, सेक्टर 5
हिरण मगरी, उदयपुर (राज.)
फोन : 0294-2463474



954.4MEW
RAT

प्रथम संस्करण - 2010

लेखक
डॉ. औंकारसिंह राठौड़
केलवा

मूल्य : 300/-

टाईप सेटिंग :
इण्डियन डिजाईन कम्प्यूटर्स
उदयपुर

मुद्रण :
क्वालिटी प्रिन्टर्स
उदयपुर

महाराणा प्रताप सतावनी

50.

प्रताप द्वारा लिखवाई गई विश्व वल्लभ लेखक चक्रपाणी मिश्र के आधार पर विश्वप्रिय; वनस्पति जीवन का विज्ञान आज भी कृषि के लिए उपयोगी है ।

प्रताप ने पहले मेवाड़ के मैदानी क्षेत्र में कृषि को उजाड़ा, ताकि शत्रु को भोजन नहीं मिल सकें, फिर शान्तिकाल में कृषि को पुनः जीवित किया ताकि मेवाड़ अन्न धन से भरापुरा रहे ; निम्न बिन्दु आज भी कृषि वैज्ञानिकों के लिए परम उपयोगी एवं प्रासंगिक है :-

भूमि में जल की उपलब्धता

1. भूमि वर्गीकरण ; भूमि साधारण है, नम, शुष्क अथवा पर्वतीय है । बलुवा, दौमट, काली, लाल पथरीली मिट्टी, ढलान वाली, पानी का निकास प्याप्त नहीं है, आदि का वर्गीकरण ।
2. पानी की उपलब्धता नम जमीन में थोड़ा नीचे, बलुआ व पहाड़ी भूमि में गहराई में पाया जाता है ।
3. पपड़ी जमी हुई चट्टानों के नीचे पानी अच्छा उपलब्ध हो सकता है ।
4. यदि अर्जुन वृक्ष की उत्तर दिशा में 5 फीट की दुरी पर वृक्ष के पश्चिम में चिंटी की एक बाम्बी स्थित हो तो, वहाँ पानी 20 फीट पर मिलेगा, अगर खुदाई में सफेद रेत फिर पिली रेत निकले तो पानी मीठा होगा
5. यदि हरिद्र वृक्ष की बायी ओर सर्प की बाम्बी हो तो 30 फीट गहराई पर पूर्व की ओर 5 फीट की दुरी पर पानी मिलेगा ।
6. यदि पैरों के टकराने से भूतल से गहरी भरमराहट ध्वनि निकले तो वहाँ 18 फीट की गहराई पर पानी होगा ।
7. यदि खजुर वृक्ष ऊपरी सिरे से झुक जाता है तो, उसके पश्चिम में 18 फीट की गहराई पर पानी मिलेगा ।

मरुस्थल में जल कहाँ मिलेगा

8. करीर वृक्ष के उत्तर में चिंटी की बाम्बी दिखे तो 60 फीट की गहराई में वृक्ष के दक्षिण में मीठा पानी मिलेगा ।
9. सफेद चिंटी की बॉम्बी के निकट पश्चिम में 30 फीट पर जल धारा मिलेगी ।
10. जहाँ काला साँप का निवास हो, वहाँ पानी मिल सकता है ।

महाराणा प्रताप सतावनी

जलाशय निर्माण

11. झीलें छः आकारों में निर्मित की जाती हैं, जैसे वृताकार, चतुष्ट कोण, त्रिकोण, दण्ड नुमा, अर्द्ध चन्द्राकार तथा बहु कोणिय ।
12. राजाओं के आमोद प्रमोद ग्रह झील के मध्य या उसके किनारे बनाये जाते हैं.

कूप

13. कुअे गाँव के पूर्व उतर कोण में हो तो शुभ होता है ।
14. जब कुल्हाड़ी को कबुतर की बीट से लेपन किया जाय तो या फिर तैल व छाछ में डुबोया जाय तो वह चट्टान काटते मुड़ता नहीं है ।
15. यदि कुअें का पानी मलीन है तो, उसे पलाश भस्म से शुद्ध किया जा सकता है ।

मू. – उपयोगिता

16. वह भूमि जहाँ मिट्टी नम हो, जल उपलब्ध हो, वृक्षारोपण के लिए अतिउत्तम है
17. यदि चट्टान छितराई हो, मुलायम हो, जमीन का रंग तपाये गये सोने जैसा हो तो पौधे, पुष्प, चंपक आदि बिना प्रयास के उगेंगे ।
18. शुष्क भूमि में खदिर, फलाश, सागवान, सप्तपर्ण, तेन्दुपत्ता उगाने में आसानी रहेगी ।
19. कचनार, करंज अशुभकारी है, साथ ही काँटे वाले वृक्ष व दुध निकलने वाले वृक्ष नहीं लगाना चाहिए ।
20. वे सभी वृक्ष जिनके फल लगते हैं, औषधिय पौधे ; सुगन्धित फुल वाले अवश्य लगाने चाहिए ।
21. वट वृक्ष घर के पुर्व में हो तो शुभकारी होता है, पीपल पश्चिम में, उतर में तुलसी व दक्षिण में उदंबर लगाना चाहिए ।

प्रजनन व रोपण

22. बीज से वृक्ष लगाने का सर्वोत्तम समय वर्षा काल है ।
23. शीत व ग्रीष्म ऋतु वृक्षारोपण के लिए निषिद्ध है ।
24. बिना कोपल की टहनिया वृक्षारोपण के लिए श्रेष्ठ होती है ।

महाराणा प्रताप सतावनी

25. यदि दिमक होने का संदेह हो तो वहाँ अश्वगंधा तथा शतपुष्पी (सौंफ) लगावें
26. बीजों को बोने से पहले गाय के गोबर में उपचारित करें फिर लगावे ।
27. किसी गड्डे में अथवा मिट्टी भरे बर्तन में नारियल उगाने के बाद उसकी एक बार नमक के पानी सं सिंचाई करें, बाद में मीठा पानी दें ।
28. नाजुक पौधों को पहले नर्सरी में उगावें फिर खेत में लगावें ।
29. पौधे छोटे हो तो उनके उपर घास से ढकाव करें ताकि जुलसे नहीं ।
30. अशोक, पुन्नाग, शिरीष, नीम और चम्पा से प्रसन्नता प्राप्त होती है अतः उपवन में पहले इन्हें ही उगावें ।

सिंचाई

31. वर्षा नहीं हो तो, नये रोपे वृक्षों को प्रातः व सांयकाल सिंचाई करनी चाहिये ।
32. पते गिरने लगे, वृक्ष मुरजाने लगे तो समझो इसको सिंचाई की आवश्यकता है
33. वृक्ष के नीचे जमीन में नमी है तो दुसरी बार सिंचाई नहीं करनी चाहिए ।

संरक्षण एवं देखभाल

34. सहारे के लिए वृक्ष के चारो ओर लकड़ियों गाडनी चाहिए ।
35. आसपास चुहों के बिलों को नष्ट कर देना चाहिए ।
36. पौधा रोपण छोटे वृक्षों के पास शत पुष्पा तथा कुबेराक्षी को पास-पास उगाना चाहिए ताकि कीटों से छुटकारा मिले ।
37. वृक्षों पर राख छिटकने से भी कीटों से छुटकारा मिलता है ।
38. वृक्ष के इर्दगिर्द कोंटे लगा देना चाहिए ताकि पशु नहीं खा सकें ।

पोषण तथा विकास

39. तिल की खली खेत में डाली जाय तो वृक्ष का पोषण होगा ।
40. दाडम वृक्ष को वाष्परहित धुओं देने से फल बड़े लगेंगे ।
41. फलदार वृक्ष अंगूर, नींबू आदि की जड़ों में मछली डाली जाय तो अधिक फलन होगा ।
42. गोबर की खाद पहले सड़ा के फिर डालनी चाहिए ।
43. यदि मधुक चूर्ण को दुध, मक्खन, शहद के साथ मिला के बिल्ले की जड़ों में डाला जाय तो मीठे तथा बीज रहित फल लगेंगे ।
44. जामुन, आम की जड़ को खुरच कर घी शहद, मिला दुध के मिश्रण का उस

महाराणा प्रताप सतावनी

- पर प्रयोग करना चाहिए, दस दिन तक शहद दुध मिला जल छिड़के तो वृक्ष पर अमृत के समान फल लगेंगे ।
45. अशोक पर सुन्दर स्त्री लात मारे बाद में घी तथा लाल मिट्टी का लेप करें तो अशोक मोहक हो खिल उठेगा ।
46. आम पर फुटे हुए घड़े की गर्दन को उपर की डाल पर पहना दी जाय तो वृक्ष के हीत में होगा ।
47. दाड़िम पर मृत नीलकंठ पक्षी डालने से अच्छे परिणाम आते हैं ।
48. क्यारियों को पणे से भरना, बकरी का मुत्र जड़ों पर छिड़कना वृक्षों को स्वस्थ रखता है ।

रोग उपचार

49. तीखा और तेज कडुआ तापवर्धक खारा एवं अत्याधिक मीठा, खट्टा तेल युक्त पदार्थ के प्रयोग से वृक्ष वात (वायु) पित्त (बाईल) एवं कफ (बलगम) से संबंधित रोगों से ग्रसित हो सकता है ।

वात रोग

50. वात जनित रोग से ग्रस्त वृक्ष सुखा, छोटा, पतला, सुस्त व कान्तिहीन होता है, उस पर फल फुल नहीं लगते हैं ।
51. वात जनित रोग नष्ट करने के लिए वृक्षों को ढंकना, खली का भोजन देना, जड़ों में बकरी की मुत्र व मींगणी का खाद देना चाहिए ।

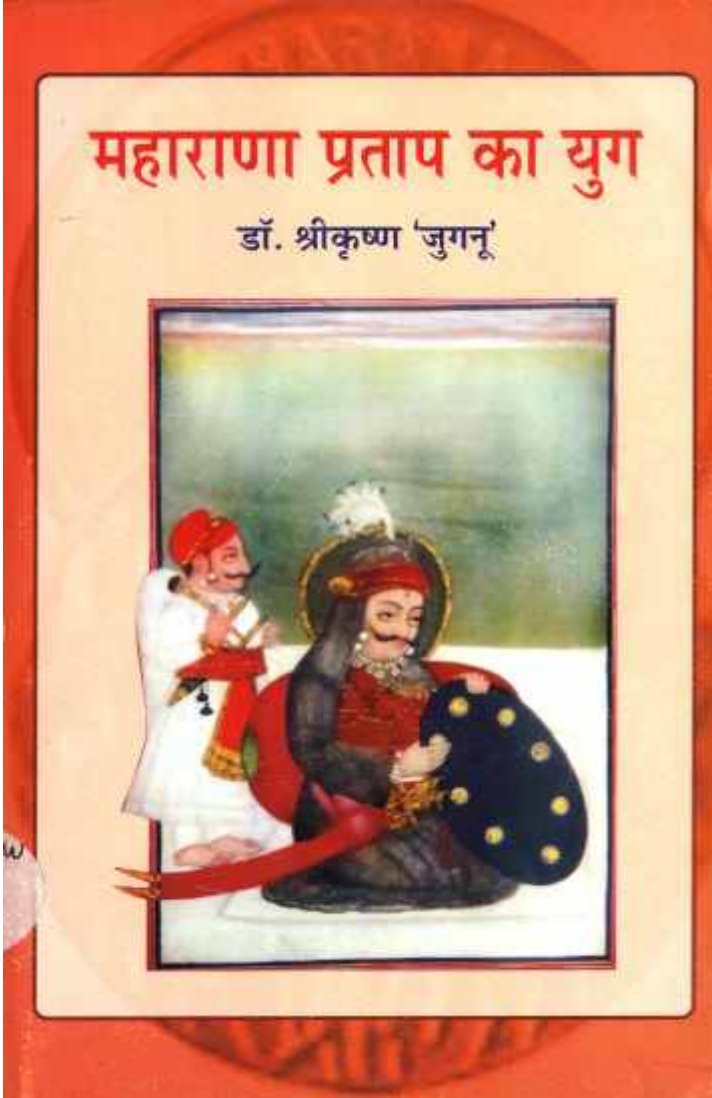
पित रोग

52. पित से वृक्ष पतला, पीली सफेद पतियों तथा टहनिया सुखी हुई होती है ।
53. तैलिय ठंडा तथा मीठे रस तथा गाय के दुध का छिड़काव से पित संबंधी रोग शान्त होते हैं ।

कफ रोग

54. कफ से ग्रसित वृक्ष की पतियों तथा छाल तेलिक होती है, पुष्प सफेदी लिए छोटे आकार के होते हैं, छोटे तथा बे स्वाद फल लगते हैं ।
55. तीखो, गर्म, शुष्क तथा कडुए अर्क और रस, कफ संबंधी रोग को सिर्फ ठीक करते हैं ।
56. फलाश, अर्जुन, उदुंबरी, सप्तपर्ण, नींबू तथा रोहत की छाल से बनाया हुआ काढ़ा औषधि के रूप में काम में लें ।
57. वृक्षों की काटछांट करते रहना चाहिए, जिससे कम रोग लगे व किटाणुओं से खतरा कम होगा ।

MAHARANA PRATAP KA YUG
————— *2010* —————



This document is extracted from the book titled
'Maharana Pratap Ka Yug'

Author: Dr. Shrikrishna 'Jugnu'

Published by Aaryawat Sanskriti Sansthan, Delhi
Printing at B.K. Offset, Delhi

ISBN : 978-93-80943-00-8

प्रकाशक : आर्यावर्त संस्कृति संस्थान

बी-216 चन्दू नगर, करावल नगर रोड,
दिल्ली-110094

© : श्रीकृष्ण 'जुगनु'

मूल्य : 395.00 रुपये

प्रथम संस्करण : 2010



954.4 MEW
SHR

शब्द-संयोजन : प्रिंट कम्प्यूटर्स

चन्दू नगर, करावल नगर रोड, दिल्ली-110094

मुद्रक : बी. के. आर्फसेट

नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

ERA OF MAHARANA PRATAP {HISTORY} :

BY

DR. SHRIKRISHAN 'JUGNU'

है। किताब-ए-नियमत-खान-ए-नासिरशाही में सुगंधित मदिरा बनाने की विधियां दी गई हैं और उनके लिए चंदन की लकड़ी, केसर, गुलाब, अंबर आदि के प्रयोग का निर्देश किया गया है।¹⁸⁰ अकबर भी इस उद्योग से उब गया था। उसने कोतवालों को हुक्म दिया था कि लोगों के घरेलू जीवन में दखल दिए बिना जहां तक इस पर बंदिश लगाई जा सकती है, लगाई जाए। इसके विपरीत जहांगीर ने तो, जो स्वयं बड़ा शराबी था, इसका बिल्कुल निषेध कर दिया किंतु निषेध के इस हुक्म के पीछे कदाचित गंभीरता नहीं थी और यही हुआ कि उसका पालन नहीं हुआ।¹⁸¹

कृषि व वृक्षायुर्वेद का विकास —

जैसा कि अन्यत्र कहा गया है कि नदियों और उपजाऊ मिट्टी ने इस क्षेत्र में फसलों की सौगात दी है। मुंहणोत नैणसी ने प्रताप के कुछ ही समय बाद मेवाड़ का जो वर्णन किया, उसमें फसलों और उनके क्षेत्रों का वर्णन भी किया है। जरगा व राहंग के बीच देसूरी क्षेत्र में जहां खरबड़, चंदेल, बोडाणा, चंदाणा राजपूत बतौर सासनिक बसे हुए थे और प्रजा की तरह ही भोग देते थे, आम खूब उगाते। वहां चावल, गेहूं, चना, उड़द अधिक मात्रा में होता था। बारा व बाठरड़ा इलाकों में गेहूं की पैदावार बेहतर थी। छप्पन, चावंड, जवास व जावर के बीच पीपलदड़ी व सीरोड़ के पहाड़ थे, वहां चावल व गेहूं की पैदावार होती थी। यहां वन इतना सघन था कि सूर्य के दीदार तक नहीं होते। बेगूं जो कि चुंडावतों का बड़ा इलाका था, में बड़ी पनवाड़ी और गेहूं व चने की पैदावार होती थी। अंबासा से 10-12 कोस पर स्थित नाहेसर जहां भील, बनिये व कुलमी परिवार बसे थे, में पांच सौ सात सौ बीघा कृषि योग्य भूमि थी, शेष पहाड़ों के तले दबी हुई थी और आम, रायण-खिरणी व इमली के पेड़ों की बहुलता वाली थी। वहां गेहूं, चना, मक्का, उड़द के अलावा बालण ककड़ी अधिक होती थी।¹⁸²

नैणसी के इस विवरण में नाहेसर के आसपास मक्का की पैदावार बताई गई है किंतु मेवाड़ में आलोच्य अर्वाधि में मक्का की खेती शुरू नहीं हुई थी। यह मशहूर कहावत 'गेहूं छोड़ मक्की खाणो, पर मेवाड़ छोड़ कठी नी जाणो' बहुत बाद की है। न तो चक्रपाणि और न ही अन्य किसी समकालीन स्रोत ने मक्का का उल्लेख किया है। इंपीरियल गजेटियर आदि में भी इसका अभाव है और पुर्तगालियों के विवरणों के अनुवादों में 'भारतीय मक्का' शब्द का उल्लेख किया जाता है लेकिन उसके लिए पुर्तगाली का जो शब्द प्रयुक्त हुआ है, उससे तात्पर्य 'भारतीय ज्वार' है। नैणसी का उपर्युक्त विवरण मेवाड़ के चारों ही ओर अच्छी पैदावार होना

दिव्यदत्तम

॥१९॥

रुजिकादिः तिलासदास्युत्पन्नातिथते ३३ः निधामश्रुति मनुजामपूर्व २३कीमपान्ता परिपूर्णपश्चात् पातोविधेयकुवावुनित्ताव सतकालिकुतुम,
 तपदि २६ शूर्पिपवातांतिरगविश्रितशक्तिवाचकि ३३तुतेमिहने ३६अवद्विरेपैश्चतुल्याभवेतिवलो जगदुप्यसिताः ३३ः अश्रमतांतेरकालविश्रि
 करणं मधुकपुत्रैरुपदि कुशसिनाशरसौजयुतैश्चभिधैः आद्यद्येभ्यदि २३मसमूलफलं ज्ञानसायिदिवर्जितासाम् ४० गुजामधुद्वररक्षरजामधुक
 पुष्पाणि विक्षीपं कौंडं अंतर्निधायोपरिवसाविक्रिप्तिमैरोम्याकारमस्त्रिर्धर्म ३३ः जीवति कापन्नमः शीलानंमं डिष्टिकारुनिशावैश्च गोजाविदु
 थैः सति लेखिलि स्याकापी कि स्याच्च वती लाला ४२ः कार्तिकामयवति शापनाशतिरपरिता सूर्येतरद्वंमंसिताः कालुणजगामेवित ४३ः त्रिकलाशाल्कनी
 त्वज्जिः सति शाकुलमीधुभिः तिगतिकव्यकापीती हरितुफलमवेर ४४ कार्मिपतीतीतिगतामपष्टव्यवादिशापुममुः शूर्पिलेमान् तरद्वुक्तिताः क्यु
 पीतमूलात्तार्पसि की स्यात्कुचुलः क ४५ शूर्पिपवातां परिदोडुकेदुरवेता नि क्ताजविडंगभूषेः दुधुपिताः आसापरिपाककाले म्जात्रवेत्तिष्ट फलाहि म
 थ्वर ४६ पूर्वोक्तयोगेन इतमसवृत्तमनाशतोल्ला अयितिकनेमान् समसवली विरपाश्चर्यमुनिष्टे मरक्षि फलमवेति ४७ः कसूरिकागंधरक्तः दुग्ध
 तोपनंतं तिगतानः सुमक्षः मनुजस्योत्पन्नसत्थे कुकोडौ जवेत्किष्टतरो हिरुत ४८ः जलैः लेशीरुतां वुनित्कथितविक्षकं तप्यतीरन्मं बद्धि कि नदीं सु
 रती ह वै ४९ विचित्रकरोपेण किपंतो लिदितो मया ५० वाश्रुतैरेनेशशोका नुसातः ५१ः विद्विष्यद्व्याकादिं श्रेष्ठे स्मितविक्षवत्तने विधीकरात्तुतो-
 गुलातिनवनी रम्यमार ५२ः इति श्रीमिश्रचक्रप्रतिदिरचिते श्री श्री कुरुराजराजवर्मोप्याम् ॥ समाप्त १८ २५ शके ७२० काः लुगतदुस्त्राथ नवमो लिखितः ॥ १९ ॥
 नारायणेन भक्तवत्सलं तं पर्याश्रितम् ॥

'विश्ववल्गम' की मूल पाण्डुलिपि का अन्तिम पृष्ठ

सूचित करता है किंतु अकाल के दिनों में यह स्थिति नहीं रही होगी। यह ज्ञातव्य है कि 16वीं और 17वीं सदियों के दौरान देश के अधिकतम भाग अकालग्रस्त रहे हैं। संवत् 1612 (1555-56 ई.) के अकाल के लिए तो आज तक सुना जाता है : सोळा बारा, आजै मती दुबारा। फिर, 1596 ई. में भी अकाल पड़ा जिसमें हालात ऐसे बदतर हो गए कि मनुष्य मनुष्य को खाने पर आमादा हो गया और सड़कें तथा गलियां लाशों से पट गई थीं। इसी के आसपास रुद्रबीसी और मीन के शनैश्चर के योग बना, यदि तुलसीदास की कवितावली को आधार माने तो लगभग यही काल था और इसमें महामारी रही।¹⁸³

फिर, टिड्डी की समस्या भी रही ही होगी। कृषि के खात्मे के लिए होने वाली विभिन्न व्याधियों को नारद, स्कंदादि पुराणों और कामंदकीय नीतिसार में 'इति' नाम दिया गया है। हरिवंश, पद्म आदि पुराणों में सात प्रकार की इतियों का जिक्र है। प्रताप के काल में इतियों के अतिरिक्त वनस्पति में लगने वाली व्याधियों को पहचाना गया। विश्ववल्लभ के विवरण से ज्ञात होता है कि प्रताप ने कृषि और वृक्षों के संरक्षण, संवर्धन पर पर्याप्त जोर दिया। बाबर ने बागवानी का जो प्रेम प्रदर्शित किया तो आगरा के बगीचे में एक तरबूजे की बेल ही लगाकर रह गया किंतु प्रताप ने बगीचे तैयार करने की रूपरेखा ही तैयार नहीं करवाई बल्कि युग को अप्रतिम आदर्श दे दिया। विशेष खाद की तरह 'कुणप जल' के प्रयोग से फसलों की तत्काल बढ़ोत्तरी और निरोध व परिपक्व फसल उत्पादन के प्रयास किए गए। प्रस्तुत लेखक ने ही सर्वप्रथम विश्ववल्लभ का संपादन कर लोगों को सुलभ करवाया। हमें याद रखना चाहिए कि इस ग्रंथ में श्रेष्ठ फसल उत्पादन के लिए जो उपाय बताए गए हैं, उन पर 2006 ई. में अमेरिका में पेटेंट करवाया गया और कृषि-ऋषि वाल्मीकि श्रीनिवासन आर्यंगार (यवतमाल जिलांतर्गत केशवपुरी, महाराष्ट्र) ने जो चिंतनकर विधियां तैयार की, उस आधार पर उद्यमी विनोद सहरिया ने अबाली (अरुणाचल प्रदेश) में बड़े भूभाग पर ऑर्गेनिक चाय का उत्पादन शुरू किया है और उसमें अच्छी सफलता मिली है।¹⁸⁴ इसी कृति के महत्व को जर्मन विद्वान ज्यूएल वोज्जिला ने 2006 ई. में प्रकाशित अपनी 'हिस्ट्री ऑफ कृषिशास्त्राज्' में लिखा¹⁸⁵ प्रो. लल्लन गोपालजी और प्रो. विनोदचंद्र श्रीवास्तव ने एंशियंट साइंसेज ऑफ इंडिया में प्रतिपादित किया है। इसके अतिरिक्त एग्रो हिस्ट्री फाउंडेशन, सिकंदराबाद के संस्थापक बाई. एल. नैने ने अपने कई लेखों में विश्ववल्लभ वर्णित कुणपजल विधि को बहुत महत्वपूर्ण माना है। विश्ववल्लभ से ज्ञात होता है कि मेवाड़ में उस समय वनस्पतियों में दो प्रकार के कृमियों को खोजा गया था -

सामुदायिक संगठन, युद्ध व अन्य परंपराएं तथा अवदान / 191

1. वे जो पेड़ों के अंदर पाए जाते थे, उन्हें आभ्यांतरिक कृमि कहा गया तथ
2. वे जो पेड़ों के बाहर पाए जाते हैं, उन्हें बाह्यकृमि माना गया है।

इसी प्रकार मेवाड़ में सर्दी की ऋतु में पाला या दाह लगना एक समस्या है उस काल में भी किसान इससे परेशान थे। शाक-तरकारियों और फसलें ही नहीं पेड़ भी इससे जल जाते और अनुपयोगी हो जाते थे। बेल लताएं गल जाती थीं प्रताप के काल में दाह के कारणों व इससे अप्रभावित रहने वाले वृक्षों का अध्ययन हुआ। घुंआ, आग आदि से फसलों को बचाने के प्रयोगों की सलाह दी गई बर्फबारी, आगजनी, प्रचंड आंधियों से वनस्पति के खतरों को चिह्नित किय गया।

परंपरानुसार आयुर्वेदीय सिद्धांतों के आधार पर वृक्षों की चिकित्सा की जाने लगी थी। वात, पित्त और कफ जैसे लक्षणों के आधार पर वृक्षों की बीमारियों में वातल, पित्तज व कफल व्याधियों के लक्षणों का निदान न उनका उपचार किया जाने लगा। ये विधियां पारंपरिक 'वृक्षायुर्वेद' के आधार पर ही थीं जिनका जिक्र मुख्य रूप से विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अग्निपुराण, बृहत्संहिता और सुरपाल विरचित 'वृक्षायुर्वेद' सहित शार्ङ्गधर कृत 'वाटिकाविनोद' में मिलता है। विष्णुधर्मोत्तर में कहा गया है कि रूग्ण पेड़-पौधों की जो वृक्षायुर्वेद विधान से यथाविधि चिकित्सा करता है, वह स्वर्गलोक को पाता है।¹⁹⁶ चाणक्य ने सर्वप्रथम वृक्ष-गुल्मायुर्वेद का जिक्र किया है¹⁹⁷ और ब्रह्मपुराण में वृक्षायुर्वेद-वैद्य का वर्णन हुआ है।¹⁹⁸ किंतु, प्रताप ने नवीन सर्वेक्षण के आधार पर राज्य के लिए कृषि व बागवानी विषयक आदर्शनीति को अपने सामने रखा।

प्रताप के काल में विभिन्न शाक तरकारियों में मूली, बैंगन, कद्दू, पटोल या परवल, करेला, लौकी आदि की खेती को बढ़ावा दिया गया। इनके लिए विभिन्न प्रकार के ऊर्वरक, कुणप जल आदि का प्रयोग सुझाया गया। उन्नत बीज और उन्नत प्रजातियों की प्राप्ति के लिए किए गए प्रयोगों का ही यह परिणाम था कि विशेष विधियों के प्रयोग से बहुत लम्बे मूले पैदा किए जाने लगे। वृहदकाय वार्ताक या बैंगन उपजाए जाने लगे। मेवाड़ में विशेष प्रकार के कद्दू व परवल उगाए गए। अस्थि रहित गाजर की पैदावार हुई। राज्याश्रित वाटिकाओं में किए गए इन प्रयोगों को जनता बहुत कौतुक के साथ देखती भी थी और स्वयं भी प्रयोग करती थी। गुठली रहित और अनस्थिवाले फल लेने के उपाय खोजे गए। इसी प्रकार तिल, जौ, दालों, सरसों की खेती में भी प्रयोग किए गए और उनका औषधीय उपयोग भी समझा गया। उपज बढ़ाने लिए तिल की खली, तिल की

हरी खाद के प्रयोग को महत्व दिया गया। घास की पैदावार में इजाफे का भी प्रयास इस काल में हुआ।

प्रताप के काल में फलोत्पादन व पुष्पोत्पादन की दिशा में बहुत जोर दिया गया। इस दिशा में पेड़ों से अधिकाधिक फल कैसे लिए जा सकते हैं, कैसी खाद व औषधियों का प्रयोग हो, किस प्रकार से कलमें लगाई जाए, कैसे संकर पौधे तैयार किए जाएं, इस दिशा में अनुसंधान की पहल हुई, गुलाब, कुमुदनी, केतकी जैसे फूलों पर लिए गए प्रयोग इस संबंध में स्मरणीय हैं। पुष्पों को सुगंधित बनाने की विधियां इजाद हुईं। यहां तक कि पलाश के फूलों को भी सुगंधित करने की विधियां खोज ली गईं। सुगंध वृद्धि के लिए औषधीय प्रयोग किए गए।

रोपण के लिए योग्य- अयोग्य पौधों की कोटियों का निर्धारण भी इस समय के प्रयोग की देन मानी जा सकती है। प्रयोगों से सिद्ध किया गया कि रोपण के लिए तीन कोटि के पौधों का सदैव ध्यान रखना चाहिए-

1. अधम पौध- जिन पौधों में फूल व फल आ गए हों वे रोपण करने की दृष्टि से अधम होते हैं।

2. मध्यम पौध- जिन पर शाखाएं फूट गई हो तथा

3. श्रेष्ठ पौध- जिन पर शाखाएं नहीं आई हो या जो अजातशाखा हो।

इसी प्रकार वृक्षारोपण के लिए ऋतुओं का भी विभाजन हुआ। इनमें वर्षा ऋतु या पावस काल को बीजवपन व रोपण के लिए श्रेष्ठ ऋतु, शरद व मध्य को मध्यमकाल व ग्रीष्मऋतु को अधम और त्याज्यकाल कहा गया तथापि ज्येष्ठ में रोपण पर शोध हुआ और कपिपय पौधों के लिए चतुर जनों की सलाह आवश्यक मानी गई। यह उस काल में पौध विज्ञानियों के होने का प्रमाण देता है।⁸⁹

बाबर और अकबर का वाटिका प्रेम भी लोगों ने लिखा है। बाबर तो हिंदुस्तान में खरबूजों की खेती शुरू करने का दावा करता है। उन वाटिकाओं के लिए दूर-दराज से भी पौधे आदि मंगवाए गए थे किंतु प्रताप के निर्देश पर लिखी गई इस कृति का प्रभाव यह रहा कि प्रताप के शासनकाल में तो मेवाड़ में वाटिकाएं, बगीचे, बाड़ियां आदि बनीं हीं, परवर्ती शासकों ने भी इसमें दिलचस्पी दिखाई। यहां समय-समय पर अन्य प्रदेशों से आने वाले राजदूत अपने साथ बीज, पौध आदि लाए। महाराणा सज्जनसिंह (1875-85 ई.) ने भी इस दिशा में रुचि दिखाई और गुलाबबाग का विकास हुआ। उस समय कविराजा श्यामलदास के माग्राह पर कोटेश्वर दशोरा ने अग्निपुराण में लिखित वृक्षायुर्वेद, वृक्षायुज्ञानम् को वाग रो चेटो लगावा री विधि' नाम से मेवाड़ी में लिखा।⁹⁰ इसमें वाटिका विज्ञान

सामुदायिक संगठन, युद्ध व अन्य परंपराएं तथा अवदान / 193

को कौतुकचिंतामणि में आए विवरण से अलग लिखा गया जैसा कि ग्रंथकार कहता है। इस समय तक यहां के सर्वश्रेष्ठतुविलास, चंपाबाग, रसबाग, श्यामलबाग जैसी वाटिकाएं और पचास से अधिक सुफला बाड़ियां अपनी हरियाली, सुगंध व सुरभि बिखेती रही।

व्यावहारिक एवं राजकाज की भाषा —

आलोच्य अवधि में राजकाज की भाषा तत्कालीन मेवाड़ी ही थी। दूर के राज्यों को पत्र लिखे जाते तो वे संस्कृत में लिखवाए जाते थे किंतु पट्टे आदि मेवाड़ी में ही जारी किए जाते थे। मुगलों के दरबार में जहां कि पुर्तगालियों ने दस्तक दे दी थी, दुभाषिये होते थे किंतु मेवाड़ में संस्कृतविद् ही स्थानीय भाषा में अनुवाद करता था। प्रताप के प्रपितामह महाराणा रायमल ने एकलिंगजी को साक्ष्य मानकर 1488 ई. में यह राजाज्ञा जारी की थी कि संस्कृत तो ज्ञानी-अध्येता ही समझ सकता है अतः आम आदमी के लिए राजाज्ञाओं को देशज भाषा में लिखा जाना चाहिए।¹⁹¹

प्रताप के काल की भाषा के नमूने तत्कालीन ताम्रपत्रों में सुरक्षित हैं। हालांकि इस भाषा और कुछ समय पहले की मेवाड़ी में कोई खास बदलाव नहीं आया था। इस काल में राजकीय आदेश श्रीमुख अर्थात् महाराणा के कहने पर जारी होते थे और आज्ञा भामाशाह की होती थी जबकि पंचोली (कायस्थ) जेता और गोवर्धन द्वारा लिपिबद्ध कर लिखवाया जाता था। उदाहरण के तौर पर पंडेर गांव का ताम्रपत्र—

श्रीरामजी। गणेश प्रसादातु। एकलिंगजी प्रसादातु। (भाले का चिह्न व सही) सिध स्त्री महाराजाधिराज महाराणाजी स्त्री प्रतापसिंधजी आदेशातु तिवाड़ी सादुल नाथण भवान काना गोपाल टीला घरती उदक आगे राणाजी श्रीजी तांबापत्र करावे दीघो थो, प्रगणे जाजपुर रा गाम पंडेर महे घरती बीघा 11 करे दीघी श्रीमुष हुकम हुओ, साह भामा संवत् 1645 काती सुद 15, महाराणाजी स्त्री उदेसिंधजी रो दत्त।

इसी प्रकार 1576 ई. में कांकरोली स्टेशन के निकटस्थ संथाणा गांव के आचार्यों को जारी ताम्रपत्र का उदाहरण—

श्रीरामोजयति। श्रीगणेशप्रसादातु। एकलिंगजी प्रसादातु। (भाले का चिह्न व सही) महाराजाधिराज महाराणा श्रीप्रतापस्यंघ आदेशात् आचार्य बाला जीवा कीस्रदास बलभद्र कस्य गांव 1 सथाणो मया कीघो उदके आघाट दत्ता कुंभलमेर मध्ये संवत् 1633 वर्षे भाद्रवा शुदी 5 रीवौ दुए (श्रीमुषे प्रति दुए रामजी) साह 194 / महाराणा प्रताप का युग

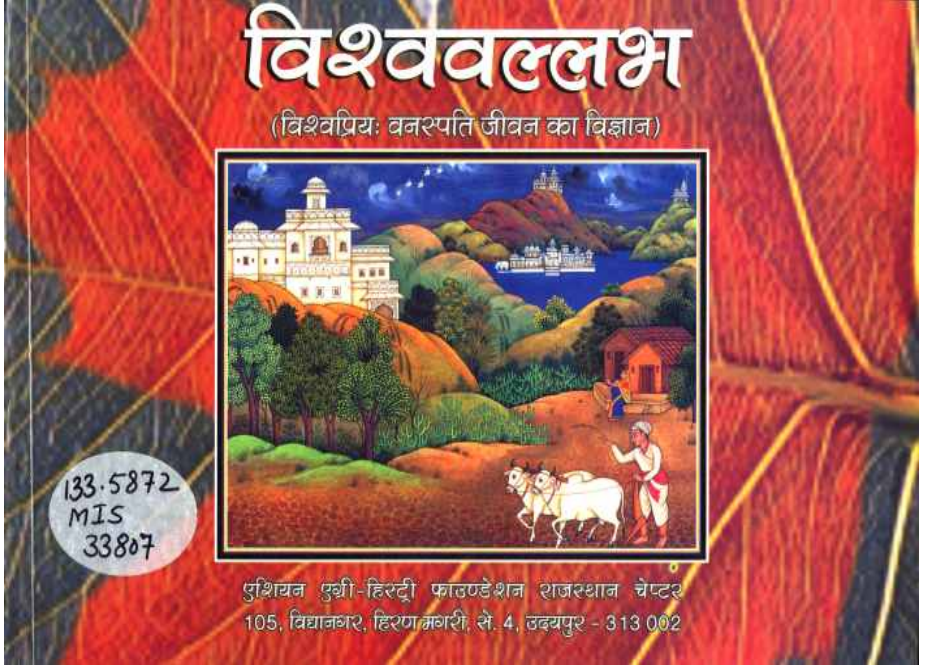
भांमा पहला पत्र बले गुयो लुटे गयो (जौं) सुं नवो करे मया कीधो...।

इस काल के अक्षरों के नमूने ताम्रपत्रों सहित रागमाला के चित्रों पर लिखे हुए मिलते हैं। प्रायः शिरोरेखा खींचकर ही अक्षरों को लिखा जाता था, कभी-कभी प्रत्येक अक्षर के ऊपर पृथक से शिरोरेखा खींचकर भी अक्षरों को लिखा जाता था। वाक्य के समाप्त होने पर पूर्ण विराम का प्रयोग होता, अल्प विराम का प्रयोग नहीं किया जाता था। जहां अक्षर या पंक्ति गलत हो जाती थी, वहां हरताल या पीली स्याही लगा दी जाती थी। पुस्तकों में किसी अक्षर के छूट जाने पर वहां हंसपद या मोरपद का चिह्न बनाकर वहाँ पर ऊपर की ओर या बाहर शेषांश (छूटे हुए अंश) को लिख दिया जाता था, जैसा कि उदयसिंह के समय चित्तौड़गढ़ में लिखित 'पंचाख्यान' की पांडुलिपि से विदित होता है। यह पंचतंत्र की एक वाचना है। किसी ताम्रपत्र पर प्रताप के हस्ताक्षर नहीं हैं चूंकि ऐसा पहले भी नहीं होता। ऐसे में यही माना जा सकता है कि हर्ष और भोज के काल में रही परंपरा बहुत पहले ही समाप्त हो चुकी थी। महाराणा कुंभा के समय से भूमि को एकलिंगजी प्रसादात् कहने की परंपरा चली, वह यथावत थी और शीर्ष पर 'श्रीरामोजयति' लिखा जाता था। किंतु, महाराणा के लिए 'दीवाणजी रो होकम' जैसी परंपरा संभवतः इस काल तक नहीं थी। कुछ पर्वतों परवानों में विजय कटक का डेरा चावंड से जिन पट्टों को जारी करना माना जाता है, उनमें भी यह परंपरा नहीं है।

दानपत्रों को दंताल-पत्र के रूप में कंठस्थ करने की परंपरा थी। मृगेश्वर-गोरवाड़ के कान्हा चारण को प्रताप ने ग्रामदान किया था। उसने इस समूची घटना को काव्यबद्ध कर याद रखने के लिए छंदों की रचना की, उसी में ताम्रपत्र के पाठ को भी शामिल कर लिया था। ऐसी परंपरा तवारिखों, ख्यातों में भी थी। जब कभी अवसर होता, पाठ करते समय ताम्रपत्र के पाठ को भी दोहरा दिया जाता। इसे दंतालपत्र कहा जाता था। इतिहासकार मुंशी देवीप्रसाद ने इसे सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित करवाया था। इसी प्रकार बलीचा-हल्दीघाटी में जब प्रताप के प्रिय घोड़े चेटक का निधन हो गया तो उसकी छतरी बनवाई गई। उस छतरी की सेवा-पूजा के लिए प्रताप ने तत्कालीन श्रीमाली ब्राह्मण श्रीधर को बलीचा गांव दान किया था। इसका पट्टा भी था जिसका नवीकरण महाराणा जवानसिंह के समय किया गया किंतु बलीचावासी उस प्रसंग को दोहे के रूप में कंठस्थ किए हुए हैं।⁹²

इसी प्रकार इस काल में डिंगल में जहां कविताओं की रचनाएं की जाती थी वहीं पिंगल में पदों का सृजन भी होता था। इसमें मिलीजुली भाषा भी होती

VISHVAVALLABHA



This document is extracted from the book titled
'Vishvavallabha'

Translated by Dr. Shivcharan Lal Choudhary

Published by Asian Agri - History Foundation, Udaipur

विश्ववल्लभ

(विश्वप्रियः वनस्पति जीवन का विज्ञान)

अनुवादक

डॉ. शिवचरण लाल चौधरी

टिप्पणीकर्ता

डॉ. नलिनी साधले व डॉ. वाई.एल.नेने



एशियन एबी-हिस्ट्री फाउण्डेशन राजस्थान सेक्टर
105, विद्यानगर, हिरण नगरी, से. 4, जयपुर - 313 002

प्राक्कथन

लाम कमाने का अनिच्छुक एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन (ए.ए.एच.एफ.) न्यास की स्थापना एवं पंजीयन एशिया के दक्षिणी एवं दक्षिण-पूर्व प्रदेशों में संपोषणीय कृषि के अनुसंधान को प्रोन्नत करने हेतु कृषीय विरासत संबंधी जानकारीयों के प्रसार को सुगम करने के उद्देश्य से सिकन्दराबाद, भारत में 1994 में किया गया था। इन प्रदेशों में मुख्यतः सूखे के कारण कभी-कभी सीमित क्षेत्रों में पड़ने वाले अकाल में कई वर्षों तक अपनी जनता के लिए सुरक्षा उपलब्ध कराई थी। यहां कृषकों ने विभिन्न कृषि-पारिस्थितिकी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त कुछ अति संपोषणीय कृषि प्रबन्धन तकनीकों को विकसित किया था। पारम्परिक विद्वता तथा स्वदेशी समय प्रौद्योगिकियों, जिन्होंने विगत समय में दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के किसानों को संपोषित किया, से काफी कुछ सीखना है। प्राचीन

पाठ/पाण्डुलीपियों को अंग्रेजी में अनूदित करके तथा पाठ की वैज्ञानिक विषयवस्तु पर टीका सहित इन अनुवादों को प्रकाशित करके प्राचीन तथा मध्ययुगीय कृषि की जानकारी को प्रसारित करना एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन के मुख्य उद्देश्यों में है। प्राचीन परम्पराओं को सत्यापित करने हेतु अनुसंधान को प्रोत्साहित करना विशेषज्ञों की इन टीकाओं का उद्देश्य होता है।

एशियन एग्री - हिस्ट्री फाउण्डेशन ने अब तक चार बुलेटिनों को प्रकाशित किया है: सुरपाल द्वारा रचित वृक्षायुर्वेद (वानस्पतिक जीवन का विज्ञान (1000 ईस्वी), कृषि-पाराशर (पाराशर द्वारा कृषि) (ईस्वी की प्रथम शताब्दी), दारा शिकोह द्वारा रचित नुस्खादर-फन्नी-फलाहत (कृषि कला) (एक फारसी पाण्डुलिपि) (1650 ईस्वी), और कश्यप द्वारा रचित

कश्यपियकृषिसूक्ति (कृषि संबंधी एक कृति) (800 ईस्वी)। इस बुलेटिन में लगभग 1577 ईस्वी में विद्वान चक्रपाणि मिश्रा द्वारा लिखित एक संस्कृत पाण्डुलिपि का अनुवाद है। उन्होंने पश्चिमी भारत में राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र के महान शासक महाराणा प्रताप, जिन्होंने मेवाड़ का महत्वपूर्ण क्षेत्र खोने के बावजूद मुगल सम्राट अकबर के समक्ष समर्पण करना अथवा उनके अधीन रहना अस्विकार कर दिया था, के संरक्षण में कार्य किया। यहां तक कि जब उनका शासन अरावली पर्वत श्रृंखलाओं के छोटे से प्रदेश में रहा तो भी महाराणा प्रताप ने चक्रपाणि मिश्र जैसे विद्वानों को अपना संरक्षण प्रदान किया।

महाराणा प्रताप कौन थे? देवीलाल पालीवाल (राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, राजस्थान द्वारा प्रकाशित महाराणा प्रताप महान (हिन्दी में)) के अनुसार महाराणा प्रताप महाराणा उदयसिंह (1538–1872) के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में 9 मई, 1540 को पैदा

हुए थे, जो राजस्थान में मेवाड़ के शासक थे। महाराणा प्रताप उनके पिता के उत्तराधिकारी बने और 28 फरवरी, 1572 को मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे। 1568 में मेवाड़ का काफी भूभाग अकबर द्वारा जीत लिया गया था और उन पर आत्मसमर्पण करने का दबाव लगातार बना हुआ था। महाराणा प्रताप ने अकबर की सेनाओं के बार-बार होने वाले आक्रमण से अपने राज्य की आजीवन सफलतापूर्वक रक्षा की। अन्त में 1586 में अकबर ने महाराणा प्रताप को अकेला छोड़ने का निर्णय किया। अपने शासनकाल के दौरान महाराणा प्रताप ने चावण्ड को अपनी राजधानी के रूप में विकसित किया और 1586 से उनकी मृत्यु (19 जनवरी, 1597) तक उनका शासन फला-फूला। महाराणा प्रताप ने आजीवन अपने स्वयं के तथा अपनी प्रजा के आत्मसम्मान की रक्षा की जो प्रशासन से संबन्धित है।

और चक्रपाणि मिश्र कौन थे? जैसा कि पहले इंगित किया गया है कि चक्रपाणि ने महाराणा प्रताप के संरक्षण में

कार्य किया था। उन्होने तीन ग्रन्थ लिखे: ये हैं— राज्याभिषेक पद्धति, मुहूर्तमाला, जिसमें ज्योतिषशास्त्र, शकुन-अपशकुन आदि सम्मिलित हैं और विश्ववल्लभ, जिसमें शुष्क, अर्द्ध-शुष्क तथा पहाड़ी क्षेत्र में कृषि कला का वर्णन किया गया है। श्री बी.एम.जावलिया (महाराणा प्रताप स्मारक समिति, मोतीमगरी, उदयपुर राजस्थान, 'भारत द्वारा प्रकाशित महाराणा प्रताप एण्ड हिज टाइम्स' के अनुसार चक्रपाणि, माथुर उप जाति के ब्राह्मण थे और नासावरे चौबे परिवार से संबद्ध थे, जो पूर्वजों के समय से चले आ रहे 'मिश्रा' संबोधन से जाने जाते थे। चक्रपाणि वेदों, दर्शन-पद्धतियों, अन्य धार्मिक ग्रन्थों तथा विज्ञान की कई शाखाओं में पारंगत थे।

अभी हाल (2003 में) चक्रपाणि मिश्र के उपर्युक्त तीन विषयवस्तु के हिन्दी अनुवाद वाली एक पाण्डित्यपूर्ण पुस्तक डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' द्वारा (महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर, राजस्थान द्वारा प्रकाशित) लिखी गई है। वास्तव में

यह पुस्तक संस्कृत साहित्य के लिए एक बहुत अच्छा योगदान है। परन्तु कृषि वैज्ञानिकों के लिए इसकी उपयोगिता सीमित ही दिखलाई पड़ती है।

इस बुलेटिन में पुनर्लिखित तथा उपयोग में लाई हुई पाण्डुलिपि (5861-22) एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन के राजस्थान चैप्टर के संस्थापक सचिव डॉ. एस. एल. चौधरी के दृढ़ प्रयासों द्वारा राजस्थान प्रांच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, राजस्थान से प्राप्त की गई।

पुनः बिना कोई शुल्क वसूल किए प्रोफेसर (डॉक्टर) नलिनी साधले, हैदराबाद द्वारा इस पाठ का अनुवाद किया गया तथा उस पर टीकाएं प्रस्तुत की गईं। एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन डॉ. चौधरी तथा प्रोफेसर साधले दोनों का हृदय से आभारी है।

दो टीकाएं लिखी गईं, एक प्रोफेसर साधले द्वारा तथा

दूसरी डॉक्टर वाई.एल.नेने द्वारा। "विश्ववल्लभ" के साहित्यिक और वैज्ञानिक तथ्यों पर अतिरिक्त टिप्पणियां उपलब्ध कराने हेतु दानों टीकाएं विद्वानों तथा शोधकर्ताओं को आशाजनक रूप से उद्देहित करेंगी। मेरा विश्वास है कि विरासत को वर्तमान काल की कृषि से सम्बद्ध करने का भारतीय कृषि-वैज्ञानिकों के लिए यही एक अनुकूल अवसर है।

जोधपुर से प्राप्त हुए हस्तलिखित पाठ तथा इसकी

टंकित सामग्री को सुघाटय बनाने हेतु मुद्रित करवा लिया है। पौधों के नामों की एक सूची डॉ. वाई.एल. नेने द्वारा तैयार की गई है।

हम आशा करते हैं कि भारत में ही नहीं अपितु विश्व के किसी भी भाग में कृषि में रूचि रखने वाले व्यक्तियों के लिए यह प्रकाशन लाभकारी सिद्ध होगा।

डॉ. वाई. एल. नेने

अध्यक्ष

एशियन एग्री – हिस्ट्री फाउण्डेशन
सिकन्दरबाद

भूमिका

चक्रपाणि मिश्र द्वारा संस्कृत में लिखित लगभग 500 वर्ष पुराना ग्रन्थ "विश्ववल्लभ" कृषि वैज्ञानिकों, छात्रों, कृषकों एवं कृषि में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की एक प्रति एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन सिकन्दराबाद, (आंध्र प्रदेश) के जन सम्पर्क सलाहकार डॉ. एस.एल. चौधरी ने श्रीमती सुनीता अरोड़ा, सहायक प्राध्यापक, वनस्पति विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय के सहयोग से राजस्थान, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्राप्त हुई। एशियन-एग्री हिस्ट्री फाउण्डेशन, सिकन्दराबाद ने इस ग्रन्थ का अनुवाद अंग्रेजी में प्रसिद्ध विदुषी डॉ. नलिनी साधले से करवाकर 12 मार्च, 2004 को महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन अलंकरण समारोह में फाउण्डेशन अध्यक्ष महाराणा अरविन्दसिंह मेवाड़ द्वारा विमोचन करवाया गया। एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन द्वारा अनुवादित व प्रकाशित यह पाँचवा ग्रन्थ है।

सुरपाल द्वारा लिखित "कृषायुर्वेद" जैसा ही "विश्ववल्लभ" भी कृषि पर आधारित एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। डॉ. साधले द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित इस ग्रंथ के अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इस

ग्रन्थ में शुष्क, अर्ध शुष्क एवं पहाड़ी क्षेत्र में कृषि कला का वर्णन किया गया है। महत्वपूर्ण बात यह है कि शिरोमणी महाराणा प्रताप के संरक्षण में यह ग्रन्थ लिखा गया था। इससे यह ज्ञात होता है कि महाराणा प्रताप एक महान योद्धा व शासक तो थे ही, उसके साथ-साथ उन्होंने कई क्षेत्रों में अकादमिक गतिविधियों को भी प्रारम्भ कर प्रोत्साहित किया था। "विश्ववल्लभ" ग्रंथ उसका एक उदाहरण है।

इस ग्रन्थ का नाम "विश्ववल्लभ" क्यों रखा गया, यह ग्रन्थ के अध्ययन करने पर ही प्रतीत होता है। "विश्ववल्लभ" का तात्पर्य है "विश्वप्रिय"। अतः चक्रपाणि मिश्र ने इसका नाम विश्ववल्लभ इसलिए रखा है क्योंकि वनस्पतिक जीवन का विषय सभी के लिए प्रिय है।

"कृषायुर्वेद" की भाँति विश्ववल्लभ को भी एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन, राजस्थान सेक्टर के द्वारा मुझे हिन्दी में अनुवाद करने का सुअवसर मिला और मेने इसे पूर्ण लगन के साथ पूरा किया। आशा है कि पाठकगण इस ग्रन्थ में चर्चित भूजल, भूमि परीक्षण एवं उपयुक्तता, पौधा प्रजनन एवं वृक्षारोपण, जल प्रबंधन,

संरक्षण एवं देखभाल, पोषण एवं विकास, रोग एवं उपचार, जनस्यतिक आश्चर्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर उन पर आज उपलब्ध तकनीकों द्वारा पुनः शोध करेंगे। इस ग्रन्थ में लिखित विभिन्न नुस्खों पर स्नातकोत्तर विद्यार्थी अपना शोधकार्य कर सकते हैं। मैरे स्वयं के आठ विद्यार्थियों ने "वृक्षायुर्वेद" में प्रस्तुत जानकारियों के आधार पर अपना शोधकार्य (एम. एस.सी. तथा पीएच. डी. हेतु) कर सफलता प्राप्त की है। अतः "विश्ववल्लभ" ग्रन्थ में उपलब्ध जानकारियाँ भी शोध के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। आज आवश्यकता है हमें हमारी स्वयं की कृषि विरासत पर आधारित विभिन्न विधियों (नुस्खों) पर शोध कर उनका अनुसरण करने की।

प्रस्तुत अनुवादित ग्रन्थ "विश्ववल्लभ" के लिये मुझे डॉ. थाईएल, नेने एवं डॉ. नलिनी साधले का पूर्ण सहयोग मिला है। पौधा सारणी को सरल, सही व उनके वैज्ञानिक नामों द्वारा प्रस्तुत करने में इनका अत्यधिक सहयोग के साथ-साथ समय पर प्रोत्साहन भी मिलता रहा है। साथ ही मैं डॉ. डी.डी. गुप्ता, डॉ. के.एन. नाग, श्री बी.के. मोगरा, डॉ. आर.सी. श्रीवास्तव, डॉ. अरुनाग जोशी, श्रीमती शानु चौधरी, चौधरी ऑफसेट परिवार, चेप्टर के सभी सदस्य व मेरे अन्य साथियों के प्रति ऋणी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक

के सरल अनुवाद करने में मुझे सहयोग दिया है। मैं अति कृतज्ञ हूँ श्री कृपाशंकर शर्मा, अख्यार एवं श्री चतुर्भुज शर्मा, न्यासी 'पंडित बंदी प्रसाद महर्षि चेरीटेबल ट्रस्ट' जगपुर का, जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु संपूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान किया जिससे न्यूनतम मूल्य पर यह कृति वैज्ञानिकों, छात्रों, किसानों आदि तक पहुँच सके व सभी हमारी प्राचीन धरोहर का लाभ उठा सके।

आशा है हमारे प्रदेश व देश के युवा वैज्ञानिक, छात्र, कृषक आदि जो हमारी कृषि विरासत से कुछ सीखना व उज्ज्वल भविष्य निर्माण करना चाहते हैं इस ग्रन्थ में बताई गई विभिन्न विधियों के आधार पर सुचारु रूप से शोध कार्य करेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारा प्राचीन ज्ञान भविष्य में हमारे देश की स्थायी खाद्य सुरक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहयोगी होगा। यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि मैरी यह कृति प्राचीन एवं आधुनिक तकनीकों का समन्वय कर कृषि उत्पादन में बढवार करने हेतु आयोजित राष्ट्रीय गोष्ठी के उद्घाटन समारोह में विमोचित होगी।

डॉ. शिववारण लाल चौधरी

MMCF at a glance



Installation of the statue of Maharana Pratap at Pratap Prangan, Maharana Pratap Airport Dabok, Udaipur



Omkareshwar Mahadev Temple
Shree Bholanath Mandir Public Trust
Intali Kheda, Tehsil - Salumber, Udaipur



Front facade of the restored
Government Girls' Senior Secondary School
Jagdish Chowk, Udaipur



Development of the park
at Devasthan Department
MG College Road, Udaipur



Children's Book Fair
The City Palace Museum, Udaipur



Medical Camp organised
by Swami Vivekanand Sewa Nyas, Udaipur

MMCF at a glance



Ashwa Poojan Ceremony
The Manek Chowk, The City Palace, Udaipur



Holika Dahan Ceremony
The Manek Chowk, The City Palace, Udaipur



Maharana Mewar Foundation Annual Awards Distribution Ceremony
The Manek Chowk, The City Palace, Udaipur



Eternal Mewar

*Custodianship unbroken
since 734 AD*

Maharana of Mewar Charitable Foundation

The City Palace

Udaipur 313001, Rajasthan, India

T: +91 294 2419021-9 F: 2419020

mmcf@eternalmewar.in www.eternalmewar.in

Stay connected with us at



www.facebook.com/eternalmewar



www.youtube.com/eternalmewar



www.twitter.com/eternal_mewar



www.instagram.com/eternalmewar